गामिनी गङ्गा निश्चय वहां सन्निहिता होंगी। एक वर्ष श्रद्धासहित शुद्धचित्तसे त्रिकाल यह स्तव पढ़नेसे मङ्गलार्थी व्यक्ति मङ्गल प्राप्त करते, धनार्थी धन प्राप्त करते, कामनासम्पन्न पुरुष, काम्यवस्तु प्राप्त करते और मोक्षाभिलाषी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करते और अपुत्र व्यक्ति, पुत्रकामनासे ऋतु-कालमें पत्नीसे उपगत हो, पुत्र लाभ करेंगे। हे मुने! जो व्यक्ति गङ्गा सहस्र नाम जप करते हैं, उनको अकालमृत्यु नहीं होती, अग्नि, चौर और सर्पका डर नहीं रहता। गङ्गा सहस्र नाम जपकर ग्रामा-न्तरमें जानेसे, वहां उसका काम सिद्ध होता और निर्व्विघ्न फिर घरको लौट आता है। मनुष्य जिस समय इस स्तोत्रका पाठकर ग्रामान्तरमें जाता है, उसी समय, वार, नक्षत्र और योगकी दुष्टता क्षमताहीन होती है। यह गङ्गासहस्र नाम पुरुषके लिये आयुष्कर, आरोग्यकर, सर्व्वोपद्रव-विनाशक और सर्व्वसिद्धिकर है। सहस्र-जन्मान्तरसे जो पाप सम्पूर्णरूपसे उपा-र्ज्जित है, वह समस्त ही गङ्गा सहस्र नाम जपसे क्षयको प्राप्त होता है। हे मुने! ब्रह्मघाती, मद्यप, सुवर्णचोर, गुरुपत्नी-गामी इन चतुर्व्विध पापोंका संसर्गी, भ्रूण-घाती, मातृघाती, पितृघाती, विश्वासघाती, विषप्रयोक्ता, कृतघ्न, मित्रघाती, अग्निदायी, गो-हत्याकारी, गुरुद्रव्यापहारी इत्यादि व्यक्ति महापातकयुक्त हो क्यों न हों, या उपपातकयुक्त ही क्यों न हों, श्रद्धापूर्व्वक इन गङ्गाके सहस्र नाम जप करनेसे, उन पापोंसे मुक्ति पावेंगे। आधिव्याधि-प्रपी-ड़ित, घोरतापग्रस्त व्यक्ति भी इस स्तव-कीर्त्तनफलसे समग्र दुःखसे मुक्ति लाभ करते हैं, एकाग्रचेताः और भक्तिपरायण हो संवत्सरतक इस स्तवका पाठ करनेसे अभिलषित सिद्धिप्राप्ति और सर्व्वपापमुक्त होता है। और संशयाविष्टचित्त, धर्म्मद्वेषी, हिंस्र, दाम्भिक व्यक्तिका चित्त भी धर्म्मपरा-यण होता है। कामक्रोधविनिर्ज्जित ज्ञानीको जो फल होता है, वर्णाश्रमाचारनिरत व्य-क्तिके यह स्तव पाठ करनेसे, वही फल प्राप्त होता है। अयुत गायत्रीजपसे जो फल होता है, एकबार सम्यक्‌रूपसे इस स्तवके पढ़नेसे वह फल सम्पूर्ण प्राप्त होता है। वेदज्ञ व्यक्तिको गोदान दे-नेसे, ज्ञानीको जो फल होता है, इस स्तव-राजके एकबार पाठसे वह पुण्य सम्पूर्ण प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है। नरश्रेष्ठ यावज्जीवन गुरुशुश्रूषाकर जो पुण्य उपा-र्ज्जन करते, एक वर्ष त्रिकाल इस स्तवका पाठ करनेसे, वह पुण्य प्राप्त होता है, वेदपारायणके लिये जो पुण्य शास्त्रमें कहा गया है, छः महीने त्रिसन्ध्या इस स्तवके पाठसे वह फल प्राप्त होता है। नित्य इस गङ्गास्तवको अनुशीलन करनेसे शिवभक्ति अथवा विष्णुभक्ति लाभ होती है। जो मनुष्य रोज़ गङ्गा सहस्र नामका

पाठ करेंगे, गङ्गादेवी सदा उनके पास वशवर्त्ती होकर रहेंगी। इस जाह्नवीके स्तव पाठसे, मनुष्य सर्व्वत्र पूज्य, सर्व्वत्र विजयी और सर्व्वत्र सुखभोगी होता है। जो व्यक्ति इस स्तवका कीर्त्तन करते हैं, उन्हें गङ्गायात्री, सदा पवित्र और सब देवताओंका पूजक जानना चाहिये। वह मनुष्योंके तृप्ति साधन करनेपर गङ्गा-अभिषेक करते हैं, इसमें संशय नहीं। अतएव सब प्रयत्नोंसे गङ्गाभक्तोंकी अर्चना करेंगे। जो मनुष्य यह गङ्गास्तवराज स्वयं पढ़ें, अथवा लोभदम्भविवर्ज्जित हो गङ्गाभक्तोंको सुनावें, वह मानसिक, वाचिक और कायिक इन तीन पापोंसे क्षणमें मुक्तिलाभकर निष्पाप हो, पितृगणको प्रिय होंगे। सब देवताओंके प्रीतिभाजन होते और ऋषियोंके प्रीतिपात्र होते हैं और वह व्यक्ति दिव्यविमानमें आरोहण हो दिव्य-स्त्रीगण-परिवृत, दिव्यालङ्कारसम्पन्न और दिव्यभोगान्वित हो नन्दन प्रभृति वनमें स्वच्छन्दसे, प्रकृत देवताकी तरह आमोद करते हैं। विशेषतः श्राद्धकालमें, पार्व्वणीय ब्राह्मण-भोजनके समय, पितृलोकार्थ इस महास्तोत्रका जप करनेसे, पत्तलपर जितने अन्नकण हैं, जितने जलकण हैं, उतने वर्ष पितृगण, स्वर्गमें आमोद करते हैं। पितृगण गङ्गामें पिण्डदान करनेसे जितने प्रसन्न होते हैं, श्राद्धमें इस स्तवके सुननेसे उतनी ही तृप्ति लाभ करते हैं। यह स्तोत्र जिसके घरमें लिख कर पूजा जाता है, उसके घरमें पापका भय नहीं रहता और वह घर सदा पवित्र रहता है। अगस्त्य! अधिक क्या कहूं! मेरी यह निश्चित बात सुनो, इस विषयमें संशय करनेका कर्त्तव्य नहीं है; क्योंकि सन्देहयुक्त व्यक्तिको फल नहीं होता। पृथिवीमें जितने और मन्त्रसमूह हैं, वह सभी गङ्गास्तव-राजके समान नहीं हैं। जो व्यक्ति इस सहस्र नामका यावज्जीवन पाठ करेंगे, वह मगधदेशमें मरनेपर भी फिर गर्भवास नहीं करेंगे। जो मनुष्य नियमयुक्त हो, नित्य इस स्तोत्रका पाठ करेंगे, उसकी मृत्यु अन्यत्र होनेपर भी गङ्गातीरकी मृत्युके समान ही होगी। पूर्व्वकालमें शिवने निजभक्त विष्णुसे, इस रमणीय स्तवराजको कहा था; इस स्तवका एक एक अक्षर मुक्तिका हेतु है। गङ्गास्नानके प्रतिनिधि मैंने इस स्तोत्रका कीर्त्तन किया, अतएव गङ्गास्नानमें अभिलाषी सुधी व्यक्ति इस स्तोत्रका जप करेंगे।

एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त॥ २९॥

त्रिंश अध्याय।

वाराणसी रहस्य।

स्कन्दने कहा,—हे महाभाग अगस्त्य! सुनो; राजर्षि-सत्तम राजा भगीरथ,

ब्राह्मण-शापानलसे दग्ध अपने पितृपुरुष-गणकी उद्धारवासनासे महादेवकी आराधनाकर कठोर तपःप्रभावसे मर्त्यलोकमें गङ्गा ले गये। फिर वह त्रिभुवनके परम हितके लिये जहां मणिकर्णिका अवस्थित है, वहां उन्हें ले आये। जहां निर्वाण-पदप्रकाशन हेतु काशी नाम्नी नगरी प्रथित थी, दिलीपनन्दन भगीरथ अग्रसर हो अवलीलाक्रमसे मुक्तिप्रद विष्णुकी चक्रपुष्करिणी परब्रह्मस्वरूप देवदेवके उस क्षेत्रप्रधान आनन्दकाननमें उन गङ्गादेवीको ले गये। हे मुने! सदा शिवके सान्निध्य वशतः वह अविमुक्तक्षेत्र पहले हीसे अमूल्य था, अब भागीरथीके सम्पर्कसे मणि काञ्चन दोनोंकी तरह समधिक मूल्यवान हुआ। चक्रपुष्करिणी तीर्थ पहलेसे ही मुक्तिक्षेत्र था सही, किन्तु महादेवके मणिमय कर्णभूषणयोगसे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हुआ। शिवाश्रित आनन्दकानन इस अविमुक्त क्षेत्रमें मुक्ति पहलेसे सिद्ध होनेपर भी गङ्गा सम्पर्कसे स्थिर सिद्ध हुई। मणिकर्णिकामें गङ्गाके समागम अवधिसे ही सिद्धक्षेत्र देवदुर्लभ हुआ। जीव, तरह तरहके पाप पुण्य कर्मकर काशीमें देहत्याग करनेसे क्षणकालमें कर्मबन्धन उच्छेदकर मोक्ष प्राप्त होता है। इसमें वेदान्तवेद्य ब्राह्मणका निदिध्यासन, साङ्ख्ययोग या सर्वपापोच्छेदी तत्त्वज्ञानका प्रयोजन नहीं है, काशीमें मरनेसे ही नरगण, भगवान् अविमुक्तेश्वरके प्रसादसे मुक्तिलाभमें समर्थ होते हैं। हे कुम्भयोनि! यत्नसे हो या अयत्नसे, काशीमें कलेवर त्यागकर प्राणीसे तारकब्रह्म नामक उपदेश दे भगवान् उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। बहुत जन्मसिद्धिका मूलीभूत प्राकृत गुणपाशमें बद्ध जीव भेदज्ञानयुक्त भी काशीमें जीवन त्याग करनेसे मुक्तिलाभ कर सकता है। इस काशीक्षेत्रमें देहत्याग ही तपस्या, दान और निर्वाण मुक्तिदायी परम योगस्वरूप कहा गया है। अति पातकी भी काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गा प्राप्त हो वहानेसे देह त्याग करनेसे विष्णुका परम पद पाते हैं। पूर्वकालमें इन्द्र और वह्नि प्रभृति अमरगणने सबको ही मुक्तिमार्गोन्मुख देख इस तरह पुरीकी रक्षा विधान किया। उनलोगोंने पापियोंकी दुर्मतिदलनी दुष्टप्रवेशनिवारणी महाशिवरूपिणी असिनदी और क्षेत्रविघ्ननाशिनी दुर्वृत्तगणकी कुप्रवृत्तिरोधिनी वरणानदीको निर्माणकर काशीक्षेत्रके दक्षिण और उत्तर भागमें स्थापन किया। देवगणने इस उपायसे क्षेत्रके मुक्तिदानकी रक्षाकर निर्वृत्ति लाभ किया। भगवान् चन्द्रमौलिने स्वयं काशीक्षेत्रके पश्चाद्भागकी रक्षा करनेके लिये देहलीगणपतिको आदेश दिया। कृपापूर्वक स्वयं विश्वनाथ जिन लोगोंको आनेकी अनुमति दान करते, उनको ही (असि, वरणानदी और देहली-

गणपति) काशीक्षेत्रमें प्रवेश करने देते। इस विषयमें काशीके प्रति भक्तिवर्द्धक, अति विस्मयावह एक प्राचीन इतिहास है; कहता हूं, सुनो। स्कन्दने कहा,—हे कुम्भयोने! अगले समयमें लवणसमुद्रतट सेतुबन्ध-सन्निहित प्रदेशमें मातृभक्त, कृष्णसेवापरायण धनञ्जय-नामक एक वणिक् रहते थे। वह सत्पथपर चलके वित्त उपार्जनकर अर्थिगणके अभीष्टदानमें सन्तोषसाधन करते थे। याचकगण निज अभीष्टलाभसे सन्तुष्ट हो उनकी यशोराशिका प्रचार करते फिरते थे, धनञ्जय, असीम सम्पत्तिसमुन्नत होनेपर भी विनयावनत थे। अशेष गुणग्रामके आकर होनेपर भी गुणियोंके सामने आत्मगोपन करते थे। अति रूपवान् और धनवान् होकर भी परदारविमुख थे। सब कलाओंसे शोभमान होकर भी उनमें किञ्चिमात्र कलङ्करेखा नहीं थी। वह सत्यानृतवृत्ति अवलम्बन करनेपर भी सदा सत्यप्रिय थे। स्वयं हीनवर्ण होनेपर भी संसारकी उत्कृष्टवर्णकी वह वर्णना करते। सदाचरणगामी होनेपर भी कृती धनञ्जय सद्यानमें विचरण करते। मेधावी धनञ्जय स्वयं अदरिद्र थे सही, किन्तु उनकी बुद्धि पापदरिद्र थी। हे मुने! एक दिन इन गुणसम्पन्न धनञ्जयकी वर्षीयसी माता कालवश पीड़ित हो पञ्चत्व प्राप्त हुईं। उनकी माताने शारदीय-मेघच्छायाकी तरह चञ्चल और वर्षाकालीन नदी जैसी परिपूर्ण यौवन काल प्राप्त हो अपने पतिके भोग-सुखमें वञ्चना की थी। जो नारी अचिर-स्थायी यौवनमदसे मत्त हो पतिवञ्चना करती हैं, वह अक्षय नरकभोग पाती है। रमणीको चरित्रकी रक्षा करना सर्व्वतोभावसे विधेय है। उसमें चरित्रदोष होनेसे स्वयं विष्ठागर्त्त नरकमें पतित होती हैं, फिर प्रलयकालतक गांवकी सुवरी, या वृक्षमें अधोमुखसे लम्बमान स्वविष्ठाभोजी वल्गुनी (चमगिदड़ी) अथवा वृक्षकोटरवासिनी दिवान्ध उलू हो जन्म लेती हैं। उसके धर्म्मपरायणपतिको भी स्वकर्म्मबल अर्ज्जित स्वर्गलोकसे भ्रष्ट होना पड़ता है। अतएव आपातसुखकर परपुरुषस्पर्शसे पुण्यैकभाजन अपने देहकी सदा रक्षा करना उचित है। पतिव्रता नारी निजदेह पतिको सम्पूर्ण आयत्तकर क्या उदयोद्योत दिवाकरके उदयरोधमें समर्थ नहीं हैं? अत्रिपत्नी साध्वीप्रधाना अनुसूयाने स्वामिभक्तिबलसे साक्षात् वेदत्रयस्वरूप सोम, दुर्व्वासा और दत्तात्रयको गर्भमें धारण किया था। नारीगण सतीत्वबलसे इस लोकमें अक्षयकीर्त्ति, परलोकमें स्वर्गवास और लक्ष्मीदेवीका सतीत्व लाभ कर सकती हैं। वह दुराचारिणी धनञ्जय-प्रसूति चिरन्तन सतीत्वधर्म्मको जलाञ्जलि दे स्वैरचारिणी हो देहान्तसे नरकगामिनी हुई। हे मुने! धनञ्जय ऐसे

दुश्चरित्राके तनय होकर भी अपने जीवा-त्मप्रभावसे किसी शिवभक्त योगीके सङ्ग-लाभसे तपोवलमें अतुल्य धार्मिक हुए। जननीका देहावसान होनेपर धर्मपरायण मातृभक्त धनञ्जयने काशीकी गङ्गामें उसकी अस्थि निक्षेप करनेके लिये पहले अस्थिको पञ्चगव्य द्वारा, फिर पञ्चामृत द्वारा शोध-नकर कर्पूर कुङ्कुम आदि लिप्त करके विचित्र कुसुमसे पूजा। पहले गौड़ीय वस्त्रसे वेष्टनकर फिर पट्टवस्त्र, सुरसवस्त्र, माञ्जि-ष्ठवस्त्र और नेपालदेशजात कम्बलसे सुचा-रुरूप यथाक्रमसे वेष्टनकर उसके ऊपर विशुद्ध मृत्तिका लपेटी। फिर तांबेके सन्दूकमें निक्षिप्तकर सेतुबन्धसे उत्तरदेशगमनोपयोगी मार्ग अवलम्बनकर वणिक्ने यात्रा की। राहमें वह हीनजातियोंका स्पर्श नहीं करते थे, सदा पवित्रभावसे रहते और रातको मृत्तिका शय्यापर शयन करते थे। इस तरह क्रमागत अनभ्यस्त काम करनेसे एक दिन उनको प्रबल ज्वर आया। तब अकेले द्रव्यादि ले रास्ता चलना विषम कष्टकर बोध होनेपर उचित वेतन दे एक भारवाहीको साथ लेकर चले। हे कुम्भ-योने! इस तरह वह बहुत कष्टसे काशीमें उपनीत हुए। वहां उपस्थित हो धन-ञ्जय अपने द्रव्यादि रखाका भार भारवा-हीको दे आवश्यकमत खाद्य द्रव्यादि खरी-दनेके लिये बाजार गये। इस अवसरमें भारवाही निर्जन देखकर उनका सब द्रव्यादि अन्वेषणकर "इसके भीतर अवश्य कोई बहुमूल्य द्रव्य है" सोचकर, वह अस्थि-पूर्ण तांबेके सन्दूकको लेकर अपने घर गया। बहुत देरके बाद धनञ्जयने वास-स्थानमें आकर भारवाहीको वहां न देख व्यस्तसमस्तभावसे द्रव्यादि देखा और उसमें वह तांबेका सन्दूक न देखा। तब वह अपनी छातीमें कराघातकर हाहाकार करते हुए अतिकातरभावसे बहुत देरतक रोते रहे। इस तरह बहुत देरतक रोकर इतस्ततः अनुसन्धानकर भारवाहीको ढूंढनेके लिये उसके घरकी ओर चले। वह गङ्गास्नान और विश्वपति काशीना-थका दर्शन किये बिना ही जल्द जल्द पैर बढ़ाते यथासमय उस भारवाहीके घर पहुंचे। इधर भारवाही काशीसे चल गहनकाननमें प्रवेशकर अपहृत तांबेके सन्दूकको खोल उसमें बहुतसा अस्थिखण्ड देख, विषन्न अन्तःकरणसे अपने घर आया। प्याससे शुष्ककण्ठ धनञ्जयको उसके घर उपस्थित होनेपर भण्डारमें वही तांबेका सन्दूक और वस्त्रखण्ड देख कुछ आशा हुई। उन्होंने भारवाहीकी भार्या-से मृदुतासहित पूछा, "अरे! सच बोल, कुछ भी शङ्का न कर, मैं और भी अर्थ तुझे दूंगा। तेरा पति कहां गया है? मेरी जननीकी अस्थि प्रत्यर्पण कर। इसके देनेसे मैं निश्चय ही तुझे अर्थ प्रदान करूंगा। तुझे किसी तरहका कष्ट न

दूंगा। मेरे स्वामीने क्रोधमें पड़कर मेरी जननीका अविचारपूर्वक ताम्रपात्र अपहरण किया है, इसमें उसका भी कोई दोष नहीं. मेरी माताके दुष्कर्म्मफलसे ही ऐसा हुआ। अथवा उसका भी कुछ दोष नहीं, मेरे अभाग्यवशसे ही ऐसी घटना घटी है। अरे अयि! जननीके लिये जो काम करना मुझको कर्त्तव्य है, वह मेरे अदृष्टमें लिखित ही नहीं। मैं यथासाध्य मातृकार्य्य साधनके लिये उद्यत हुआ था सही, किन्तु दुरदृष्ट वश वह हो न सका। तेरा स्वामी जिसकुक्तिसे कह अस्थि दिखा दे, उसे सजा मारनेका कोई कारण नहीं है, उसके आने और अस्थि दिखा देनेपर उसे अपरिमेय अर्थ प्रदान करूंगा।" धनञ्जयकी बात सुनकर शवरपत्नीने अपने स्वामीको बुलाया। वहां आकर उसका स्वामी वणिक्‌को देख लज्जासे अवनतमस्तक हुआ और उससे सब वृत्तान्त निवेदनकर साथमें ले उस अरण्यमें गया। हे मुने! अदृष्टक्रमसे भारवाही उस जगहको भूल गया। वह वनमें नाना-स्थानोंमें भ्रमण करने लगा। भ्रान्तचित्त भारवाही एक वनसे दूसरे वनमें बार बार भ्रमणकर जब श्रान्त क्लान्त हो पड़ा, तब उस वणिक्‌श्रेष्ठको निश्चिन्त अरण्यमें परि-त्यागकर अपने गांव भाग आया। इस तरह परित्यक्त वह वणिक् धनञ्जय तीन दिन वहीं अन्धकार अन्तमें क्षुधासे कातर और तृष्णासे युक्तात्मा हो हाहाकार करते करते भाग्यक्रम हो काशी आये। काशीमें प्रत्यागत हो धनञ्जय अपनी माताकी परपुरुषसंसर्गकी बात लोगोंसे सुनकर प्रयाग और गयातीर्थकार्य्य समापनकर स्व-देश आये। हे अगस्त्य! उस दुश्चरित्रा धनञ्जयकी माताका अस्थिसमूह विश्वनाथकी अनुमति न होनेकी वजह काशी-धाममें प्रवेश करके भी तत्क्षणात् वहांसे फिर बाहर निकाल दिया गया। इसी तरह धर्म्मलोपसे यदि पापी व्यक्ति काशीमें काशीश्वरकी बे अनुमति प्रविष्ट हो, तो वह क्षेत्रफल नहीं लाभ कर सकता और तत्क्षणात् वहांसे बाहर निकाल दिया जाता है। यह सब कारण देखकर निश्चय बोध होता है, कि एकमात्र विश्वनाथकी अनुमति ही काशीवासका मूल है। इस काशीक्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये असि और वरणा नाम्नी नदी निर्म्मित हुई हैं। हे मुने! उसी समयसे असि और वरणाका सङ्गम होनेसे यह काशी "वाराणसी" नामसे विख्यात हुई है। इस लोकमें वाराणसी साक्षात् दिव्य करुणारूपिणी हैं; क्योंकि, इस अविमुक्त क्षेत्रमें देह त्यागकर मनुष्यगण बिना कष्टके विश्वेश्वर-रूप परमधामको प्राप्त हो उन्हींसे ही ज्ञान और कैवल्यपदको प्राप्त हो सकते हैं। वाराणसी जीवको सदा इस तरह उपदेश करती रहती है, कि हे जीव! तुमने इस

जगतमें अनेक जन्म ग्रहण किया है और अनेक बार तीर्थ-स्नानादिकर मृत्युमुखमें पतित हुए हो, किन्तु किसी तरह भी ऐकान्तिक शान्ति लाभ नहीं कर सके। यदि तुम हमारा अवलम्बनकर जीवनपात कर सको, तो मोक्षपद लाभकर शिवत्वको प्राप्त हो सकोगे। और और तीर्थजलमें प्राणत्याग करनेसे केवल ब्राह्मण, देवादि पद लाभ कर सकते हैं; किन्तु वाराणसीमें प्राणत्याग करनेसे ब्राह्मणकी बात तो दूर रही, चाण्डाल पर्य्यन्त भी पुनरावृत्तिके लिये मुक्तिपदको प्राप्त हो सकता है। यह काशीपुरी ही अपार-भवपारावारकी पारस्वरूपा है। जहां भगवान् त्रिपुरारि स्वेच्छानुसार नरगणको परम पुरुषार्थ प्रदान करते हैं। जीव अनन्ततीर्थस्नानके फलसे कलुषित शरीर त्यागकर, देवशरीर लाभ करता है। किन्तु इस काशीक्षेत्रके किसी स्थानमें अकिञ्चित्कर कलेवर त्याग करके, सायुज्य मुक्तिस्वरूप शिवमूर्त्ति लाभ करता है। जीवगणकी त्रितापसंहारिणी यह काशीपुरी प्राकृत नगरके देहावसानसे, जीव-ब्रह्मका ऐक्यरूप तत्वज्ञान न होनेपर भी, उसे तारकब्रह्मका नाम सुना, परम-पुरुषका साक्षात् विधान करती है। तब फिर संसारमें आनेकी आशङ्का नहीं रहती। अभीष्टपदप्राप्ति-आशासे, जो व्यक्ति धर्म्मार्थसुखका निलय इष्टप्रद निजदेह वाराणसीक्षेत्रमें त्याग न करके, आनन्द प्रकाश करते हैं, वह कैसे भ्रान्त हैं! यदि वह न जावें, तो अभीष्टलाभकी आशा दूर रहे, वह देह पर्य्यन्त उनका नष्ट होता है। हे काशीवासी जनगण! भगवान् अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति कपाललोचन शूलतैक भाजन रुद्र हैं—इसके परिवर्तसे केवल निर्वाणपद प्रदान करते हैं यह न समझना। तुम लोगोंको और जन्मयन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ेगी। वाराणसीक्षेत्र, जाज्वल्यमान असीम गुणकी एकमात्र भूमि है; कारण, यहांके रहनेवाले देहधारी मात्र ही इस कालमें भगवान् चन्द्रशेखर-प्रभावसे कण्ठमें गरल और कपालमें नयन धारणकर गौरीमूर्त्ति द्वारा विभूषितवामाङ्ग हो साक्षात् शिवकी तरह विराजमान हैं और देहान्तके बाद फिर देह धारण नहीं करना पड़ता। वाराणसी पहलेसे ही सुखद आनन्द-कानन है; वहां चक्रधरकी मणिकर्णिका, स्वर्णदी गङ्गाका संयोग और भगवान् विश्वनाथके सदा सान्निध्य रहनेसे मुक्तिके सब कारण विद्यमान हैं। इस संसारमें असि वरणा दोनो नदियोंके सङ्गमसे अति गौरववती और सुरनदीसम्पर्कसे शोभमाना वाराणसी ही अमल अचल मोक्षलक्ष्मीका विश्राम स्थान है। हाय! मूढ़मति जन्तुगण ऐसी भूमि त्याग कर अन्यत्र क्यों दुःख क्लेश भोग करते हैं? हाय! मूढ़ जीवगण अवश्य ही गर्भयन्त्रणा और कृतान्त दूतकी बन्धनताड़न विह्वल होकर रहेंगे; अभी

तो कदाचित् मुक्तिदायक शङ्करकी अनुग्रह-भूम्य काशी त्यागकर क्यों दूसरी जगह जावेंगे? पान, अवगाहन अर्चना और अनु-ध्यान करनेसे अपरापर तीर्थ सब सद्यः पाप हरण करते हैं, बहुत कल्याण होता है और स्वर्गफलदानमें समर्थ होते हैं; किन्तु यह वाराणसी संसारका मूलोच्छेद करती है। काशीपुरीके परिसरमें मणि-कर्णिकामें देहत्याग करनेसे, मनुष्यगण गलेमें नीलरेखा-लाञ्छित भाललोचनसम्पन्न और वामाङ्गमें नारीमूर्त्तिविराजित देह धारण करते हैं। जो व्यक्ति मणिकर्णिकाके अतुल माहात्म्यको जान मलमय पूयगन्धि कलेवर त्याग करते हैं, वह तत्क्षणात् आत्मज्ञानरूप परम ज्योतिमें मिल जाते हैं; कल्प कल्पान्तरमें भी उनका वियोग नहीं होता। रागादि दोषसे कलुषितचित्त पापिगण ही अनुपम दिव्यप्रभावशालिनी काशीपुरीको और तीर्थों के समान बोध करते हैं; उन लोगोंसे सम्भाषण करना उचित नहीं। रे मूढ़ नर! भगवान् स्मरहरकी प्रिय राजधानी वाराणसी छोड़कर कहां दिग-दिगन्तरमें भ्रमण करता है! विधिप्रभृति देवदुर्लभ अचञ्चल मोक्षलक्ष्मी पाकर भी चपलस्वभावा लक्ष्मीकी झूठी कामना क्यों करता है। उद्यमशील व्यक्तिको विद्या, धन, जन, भवन, गज, अश्व, स्रक्, चन्दन, परम रमणीय वनिता और स्वर्ग, अधिक क्या मोक्ष भी दुर्लभ नहीं है; किन्तु एकमात्र वाराणसी दुर्लभ है। पहले विधाताने तुलना परीक्षा करनेके लिये वैकुण्ठ प्रभृति लोकसमूह एक ओर और काशी-पुरीको दूसरी ओर रखकर तुलादण्डसे तोला था, तो उक्त सब लोक लघु हुए और काशीपुरी पुरुषार्थ चतुष्टयके गुरुत्व निबन्धनसे गुरु हुई थी। विश्वना-थकी कृपासे काशीपुरीमें वास कर पाने-पर, मनुष्य हो या जन्तु, सभी अद्वितीय रुद्रदेव और मान्य होते और वह नाना उपसर्गजनित या स्वाभाविक दुःखभारसे आक्रान्त होनेपर भी देहावसानमें कर्म-क्षयकर शिवतेजमें लीन हो जाते हैं। मूढ़ जन्तुगण भग्नकांस्यकी तरह अकि-ञ्चितकर, अवश्यनश्वर, जन्ममृत्यु क्लेशके आश्रय देहको काशीमें त्यागकर, तद्विनि-मयसे परमानन्दसन्दोहभूमि तेजोमय मूर्त्ति परिग्रहमें क्यों निरुत्सुक हैं? जहां मरण-कालमें स्वयं भगवान् महादेव श्रुतिमूलमें तारकब्रह्म नाम उपदेशकर, जननीजठर-यन्त्रणा दूर करते हैं, उस काशीपुरीके क्षितितलमें विद्यमान रहनेपर भी हतबुद्धि जीवगण धननाश, बन्धुनाश प्रभृति विपत्ति-राशिके अभिभूत होशोक सहते हैं। काशी-वासी होकर यदि कोई दिनमें दो तीन वार भोजन करे या स्वेच्छाचारी रहे, तब भी वह वाणप्रस्थ, वायुभक्ष, जिते-न्द्रियकी अपेक्षा अनेकगुणमें श्रेष्ठ है। इस काशीमें मरनेसे पुण्यात्मा और पापात्माकी

मतिका कोई इतरविशेष नहीं, कारण ऊषरक्षेत्रमें उत्पन्न बीजकी तरह उनके कर्म्मजनित बीज हरनेत्रसम्भूत अनलसे दग्ध हो अङ्कुरित होने नहीं पाता। अहो नगेन्द्रनन्दिनि! शशक, मशक, शुक, बक, चटक, वृक, जम्बुक, तुरग, उरग, वानर, नर जो कोई काशीमें मृत्युको प्राप्त होता, वह मुक्तिलाभ करता है। जो काशीक्षेत्रमें निरन्तर वास करते हैं, वह अति सौम्य रुद्राक्षमालारूप फणीन्द्रभूषणसे भूषित और त्रिपुण्ड्ररूप अर्द्धचन्द्रधारी पृथिवीमें मेरे पारिषद्रूपसे गण्य होते हैं। इस काशीमें जलचर, स्थलचर, मत्स्य, शृगाल प्रभृति यावतीय जन्तु रहते हैं, वह सभी मेरी कृपासे रुद्ररूप धारण करते और देहान्तपर मुझमें विलीन होते हैं। हे देवि! स्वर्गमें वर्षेषु नामक, अन्तरीक्षमें वातेषु नामक और पृथिवीमें अन्नेषु नामक जो रुद्रगण अवस्थित हैं और पूर्व्वादि चतुर्द्दिक दश दश संख्या जो रुद्रगण हैं, देवगण ऊर्द्धस्थित जिन रुद्रगणकी वर्णना कर चुके हैं और पातालमें जो असंख्य रुद्र वास करते हैं, उनकी अपेक्षा काशीवासी रुद्ररूपी जीवगण श्रेष्ठ हैं, इस विषयमें संशय नहीं! हे कुम्भयोने! इसलिये ही अविमुक्त काशीक्षेत्र "रुद्रवास" नामसे कीर्त्तित है और इसलिये ही काशीस्थित चाहे कोई वर्ण या तद्भिन्न जीवके श्रद्धापूर्व्वक ईश्वरज्ञानसे पूजा करनेपर मनुष्य रुद्रार्चनाका फल लाभ करता है।

हे मुने! शब्दशास्त्रज्ञ पण्डित लोगोंने "श्मन्" शब्दका अर्थ शव और "शान" शब्दका अर्थ शयन किया है, सुतरां "श्मशान" शब्दका अर्थ शवका शयनस्थान हुआ। महाभूतगण कल्पान्त कालमें भी इस काशीमें शवरूपसे शयन करते रहते हैं, इसलिये ही काशीको महाश्मशान कहते हैं। प्रलयके समय इस अविमुक्तक्षेत्रकी भूमि जलमें, जल तेजोराशिमें, तेज वायुमें और वायु आकाशमें विलयको प्राप्त होता है। इसके उपरान्त, आकाश अहङ्कार तत्त्वमें, अहङ्कारतत्त्व षोड़श विकारके साथ बुद्धिसंज्ञक महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है। फिर त्रिगुणात्मिका प्रकृति निर्गुण पुरुषमें विलीन हो जाती है। उक्त पुरुष ही पञ्चविंशतितम तत्त्व है, वही जीव और वही ईश्वर गृहके एकमात्र अधिपति हैं। हे मुने! इसीको प्राकृत प्रलय कहते हैं। इस प्रलय कालमें ब्रह्मा, रुद्र या विष्णु कोई भी विद्यमान नहीं रहते। फिर महाकाल मूर्त्ति परमेश्वर उन जीवको भी स्वकीयरूपमें अन्तर्हित करते हैं। उक्त महाकाल मूर्त्ति परमेश्वर ही महाविष्णु नामसे कहे जाते और उन्हींको महादेव कहते हैं। वही कालरूपी परमेश्वर आद्यन्तमध्यहीन, वही शिव, श्रीपति और पार्व्वतीपति हैं। दैनन्दिन प्रलयकालमें विनष्ट जीवगणको

अणिमाद्याष्टै विभूषित भगवान् देवादिदेव आपनी विद्यानगरी काशीपुरीको त्रिशूला-ग्रभागमें स्थापनकर रक्षा करते हैं। इस-लिये ही वहां कलिकालका प्रभाव नहीं है। स्कन्दने कहा,—हे द्विज! देवदेव शम्भुने पूर्व्वकालमें देवी पार्व्वती और विष्णुसे अविमुक्तक्षेत्रको वाराणसी, काशी, रुद्रवास, महाश्मशान और आनन्दकानन नामसे इसी तरह कीर्त्तन किया था। मैंने वह सब सुना था, इस समय तुम्हारे निकट वही काशी-संक्रान्त महारहस्य कीर्त्तित हुआ। इस पवित्र अध्यायके पढ़नेसे महा-पातक नष्ट होता और द्विजगणके यथाविधि सुननेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। हे कलशोद्भव! इसके उपरान्त काशीके विषय कथा सुननेकी इच्छा करते हो, कहो; मुझे भी काशी-वृत्तान्त कहनेमें निरतिशय आनन्द होता है।

त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय।

भैरव प्रादुर्भाव।

अगस्त्यने कहा,—हे सर्व्वज्ञ, रुद्रवा-नन्द, तारकनिसूदन, स्कन्द! काशीकी बात सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हुई, अतएव यदि मेरे प्रति आपका अनुग्रह हो, तो मुझे तत्श्रवणयोग्य विवेचना करिये, ऐसा हो है; तो काशीमें भैरवकी कथा कहिये। काशीमें भैरवके नामसे कौन प्रतिष्ठित हैं? उनका रूप कैसा है? काम क्या है? उनके कितने नाम हैं? आराधना करनेसे किस प्रकार वह साधकोंको सिद्धिदान करते हैं और उन भैरवने किस समय आराधित हो झटिति अभीष्टसिद्धि की? स्कन्दने कहा, हे महाभाग! वाराणसीके प्रति तुम्हारा जैसा प्रेम देखता हूं, समझता हूं, वैसा और किसीका नहीं है, अतएव मैं अशेषरूपसे महापातकनाशन भैरवकी कथा कहता हूं; इसके सुननेसे काशीवा-सका फल निर्व्विघ्न प्राप्त होता है। जो सुपक्व वृहत् रसालफल सदृश इस निखिल ब्रह्माण्डको पा सहसा दृढ़ निष्पीड़नकर मुहुर्मुहुः दूर निक्षेपकर उसका रस पान करते हैं और उस रसपानसे उन्मत्तकी तरह हो उद्धत नृत्य करते हैं, वह महा-भैरव अपायसे त्रिभुवन रक्षा करें। हे कुम्भयोने! विष्णु चतुर्भुज और सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा चतुर्मुख होनेपर भी महेश्वरको महिमासे अवगत नहीं हैं। यह विचित्र बात नहीं है, कारण महादेवकी माया अनतिक्रमणीया है। उस मायासे मोहित हो सभी परम पतिको जान नहीं सकते। वह परमेश्वर यदि अपनेको जनावें, तो ब्रह्मादि देवगण उन्हें जान सकते हैं, अपनी इच्छासे नहीं जान सकते। उन आत्मा-राम महेश्वरके सर्व्वव्यापी होनेपर भी उन्हें कोई देख नहीं पाता। पुराकल्प की

वाक्यातीत उन महेश्वरको सामान्य देवता समझते हैं। हे विप्र! पूर्व्वकालमें सुमेरु-शिखरपर ऋषिगणने लोकेश्वर पितामहको प्रणामकर पूछा, कि एकमात्र कौन तत्त्व अव्यय है? तब वह लोकस्रष्टा पितामह, महेश्वरकी मायासे मोहित हो परम तत्त्वको न जानकर अपनेको ही वैसा श्रेष्ठ जान वर्णन करने लगे, "मैं ही जगद्योनि, विधाता, स्वयम्भु, एकमात्र ईश्वर और अनादि ब्रह्मस्वरूप हूं। मेरी पूजा न करनेसे कोई भी मुक्तिलाभमें समर्थ नहीं है। मैं ही त्रिजगत्का सृष्टिसंहारकर्त्ता हूं। मुझसे बढ़कर कोई भी नहीं है, मैं ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ हूं।" ब्रह्माकी यह बात सुनकर नारायणके अंशोत्पन्न क्रतु हंसकर क्रोधरक्तलोचन हो कहने लगे, तुम परम तत्त्वसे अवगत न होकर क्या कह रहे हो? भवादृश योगीको एवंविध मोह उचित नहीं है। मैं ही लोकत्रयकर्त्ता, यज्ञ और परात्पर नारायण हूं। हे अज! मेरी अवज्ञाकर त्रिजगतका जीवित रहना असम्भव है। मैं ही परम ज्योतिः और परम गति हूं। तुम मेरे द्वारा नियुक्त होकर ही यह सृष्टिकार्य्य सम्पादन करते हो।" इस तरह मोहवशतः परस्पर जयेच्छाके विरोधी हो विधि और क्रतुने प्रमाणार्थ चतुर्व्वेदसे पूछा, "हे देवगण! आपलोगोंकी सब जगह ही प्रमाणरूपसे परम प्रतिष्ठा है, इसमें संशय नहीं; अतएव कहिये, क्या परम तत्त्वसे आप अवगत हैं?" श्रुतिगणने कहा,—"हे सृष्टिस्थितिकारक देवद्वय! यदि हम लोगोंकी बात मानें, तो आप लोगोंका संशयच्छेद प्रमाण हो सकते हैं।" श्रुतिगणकी यह बात सुन विधि और क्रतुने कहा,—"आप लोगोंकी बात ही प्रमाण है, अतएव विशेषरूपसे कहिये, कि परम तत्त्व क्या है।" तब ऋग्वेदने कहा,—"जिसके अन्तरमें समुदय भूतगण अवस्थित हैं, जिससे समस्त उद्भूत होता है और जिसे पण्डितगण 'तत्' शब्दका वाच्य कहते हैं, वह एक रुद्र ही परम तत्त्व हैं।" यजुर्व्वेदने कहा,—"जो निखिल याग और योग द्वारा आराधित होते हैं और जिसके बलसे मैं प्रमाणस्वरूपमें गण्य हूं, वह सर्व्वदर्शी शिव ही परम तत्त्व हैं।" सामवेदने कहा,—"जो इस विश्वमण्डलका भ्रमण कराते हैं, योगिगण जिनका ध्यान करते रहते हैं और जिनकी ज्योतिसे विश्व उद्भासित है, वह त्र्यम्बक ही एक मात्र परम तत्त्व हैं।" अथर्व्ववेदने कहा,—"भक्तिसाधन बलसे मनुष्यगण जिनका दर्शन पाते हैं, वही कैवल्यरूपी दुःखहर शङ्करको ही एक मात्र परम तत्त्व कहते हैं।" हे मुने! श्रुतिगणकी ऐसी बात सुनकर मायामोहित मोहान्ध उन विधि और क्रतुने ईषत् हास्यकर कहा, "परम ब्रह्म कामशून्य हैं, तब क्यों प्रमथ-

शिवा सहित निरन्तर क्रीड़ारत हैं, वह भस्मलिप्ताङ्ग, जटाजूटधारी, वृषवाहन, सर्पभूषण, विकटवेश, दिगम्बर प्रमथनाथ परब्रह्म कैसे हो सकते हैं?" उन लोगोंकी यह बात सुनकर निराधाके प्रणवरूपी सनातन मूर्त्तिमान हो हंसकर उन लोगोंसे बोले। प्रणवने कहा,—लीलारूपधारी भगवान् रुद्ररूपी यह हर निज आत्मातिरिक्त पत्नीके साथ कदापि क्रीड़ा नहीं करते। यह भगवान् ईश्वर स्वयं सनातन ज्योतिः-स्वरूप हैं। यह शिवा उनकी ही आनन्द-रूप शक्ति हैं, उनसे भिन्न नहीं हैं। प्रणवके ऐसा कहनेपर भी श्रीकण्ठकी माया वशतः विधि और क्रतुदेवका अज्ञान तिरोहित न हुआ। फिर उन उभयके मध्यस्थलमें निज प्रभासे द्युलोक और भूर्लोकका मध्यभाग परिपूर्णकर एक परमज्योति प्रादुर्भूत हुई। उस ज्योतिमण्डलमें एक पुरुषका आकार दिखाई दिया। उसे देखते ही ब्रह्माका पञ्चम मस्तक क्रोधसे प्रज्वलित हुआ। उस समय हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, "हम उभयके बीच पुरुषाकृतिधारी वह कौन हैं?" ऐसा मन ही मन विचार रहे थे, कि इसी अवसरमें त्रिशूलपाणि, ललाटलोचन भगवान् महादेवको देखा और उन्हें पहचानकर बोले, "पूर्व्वमें तुम्हीं मेरे भाल-स्थलसे आविर्भूत हुए थे और रोदन हेतु तुम्हारा "रुद्र" नाम रखा था, इस समय हे पुत्र! तुम मेरे शरणागत हो, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।" पद्मयोनिकी ऐसी सगर्व्व बात सुन ईश्वरने, कोपसे एक भैरवाकृति पुरुष सृष्टिकर उनसे कहा,—"हे काल भैरव! तुम इन ब्रह्माका शासन करो। तुम कालकी तरह विराजमान हो, अतएव तुम्हारा नाम 'कालराज' होगा और तुम विश्वभरणमें समर्थ हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'भैरव' होगा। काल भी तुमसे भय पायेगा, इससे तुम्हारा नाम 'कालभैरव' होगा। तुम दुष्ट हो दुर्व्व-त्तिगणको मर्द्दन करोगे, इसलिये तुम 'आमर्द्दक' नामसे विख्यात होगे, और तत्क्षणात् भक्तगणका पापभक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम 'पापभक्षण' होगा। हे कालराज! मेरी जो सर्व्वापेक्षा श्रेष्ठ काशीपुरी है, वहां तुम्हारा सदा आधिपत्य रहेगा। उस स्थानका पापपुण्यकर्म्म चित्रगुप्त नहीं लिखने पावेंगे" फिर कालभैरवने महेश्वरसे यह सब वर पाकर, बायें हाथकी अङ्गुलिनखाग्र द्वारा तत्क्षणात् विधाताका मस्तक छेदन किया। जो अङ्ग अपराध करे, उसीको शासन करना उचित है। अतएव ब्रह्माने जिस अङ्गसे निन्दा की थी, वह पञ्चम मस्तक ही कालभैरव द्वारा छिन्न हुआ। यह देखकर यज्ञमूर्त्तिधारी विष्णुने शङ्करकी स्तुति आरम्भ की। हिरण्यगर्भ भी भीत हो "शतरुद्रिय" जप करने लगे। तब भक्त-वत्सल महादेवने परितुष्ट होकर ब्रह्मा

और विष्णुको यथायोग्य प्रणामकर निज मूर्त्यन्तर कपर्दी भैरवसे कहा,—"हे नील-लोहित! यह यज्ञरूपी विष्णु और ब्रह्मा तुम्हारे मान्य हैं। तुम ब्रह्माका यह कपाल धारणकर, ब्रह्महत्या पाप अपनोदनके लिये, कापालिक व्रत अवलम्बन करके लोकशिक्षार्थ अपना व्रत दिखा, नियत भिक्षापूर्वक विचरण करो।" यह बात कहकर तेजोरूपी सनातन भगवान् अन्तर्हित हुए। इसके उपरान्त शिव भी रक्तवर्णा, रक्ताम्बरधारिणी, रक्तमाल्यानुलेपना, दंष्ट्राकरालवदना, जिह्वाललनभीषणा, अन्तरीक्षचरणा, बहुशोणितपायिनी, कर्परधारिणी, पिङ्गलतारका, भैरवकी भी भीतिप्रदायिनी, ब्रह्महत्या नाम्नी कन्याकी सृष्टिकर, उनको कालभैरवके साथ जानेका आदेश दे और 'वाराणसीको छोड़ सब जगह ही तुम्हारी गति अव्याहत होगी।' कहकर अन्तर्हित हुए। उन ब्रह्महत्या नाम्नी कन्याके संसर्गसे कालभावन भैरव कृष्णवर्ण हुए और देवदेवके आदेशसे कापालिक व्रत अवलम्बनकर कपालहस्त हो त्रिभुवन भ्रमण करने लगे। सुदारुण ब्रह्महत्याने सत्यलोक, वैकुण्ठलोक और इन्द्रादिनगरीमें भी उन कालभैरवको त्याग नहीं किया। त्रिजगत्पति रुद्ररूपी कालभैरव भी अनावलम्बनपूर्वक त्रिभुवन विचरण और प्रतितीर्थमें भ्रमण करनेपर भी ब्रह्महत्यामुक्त नहीं हुए। हे कुम्भसम्भव! इसीके द्वारा अनुमान करो,' कि ब्रह्महत्यापनोदिनी काशीका कैसा माहात्म्य है। त्रिलोकमें अनेक तीर्थ और बहुत पुण्यायतन हैं, किन्तु वह काशीकी षोडश कलाके एक कलाके योग्य भी नहीं हैं। ब्रह्महत्या प्रभृति पापसमूह तभीतक भीषण गर्ज्जन करता है, जबतक वह पापरूप पर्व्वतकी अशनिस्वरूप काशीका नाम नहीं सुनता। फिर प्रमथसेवित कापालिकव्रतधारी भगवान् कालभैरव त्रिभुवन विचरणाकुल नारायणके निकेतनमें उपस्थित हुए। भगवान् गरुड़ध्वज, सर्पकुण्डलधारी त्रिनेत्र भीषणाकृति महादेवांशसम्भूत कालभैरवको उपस्थित देख भूतलमें दण्डवत् पतित हुए। यह देखकर अन्यान्य देवगण, मुनिगण और देवपत्नी सबने चारोंओरसे उन्हें प्रणाम किया। फिर लक्ष्मीपति हरिने प्रणतभावसे मस्तकपर अञ्जलि बांध विविध स्तवसे उनका स्तव कर, क्षीरोदमन्थनोद्भूत पद्मालयासे कहा, अहो प्रिये कमललोचने! देखो, आज तुम धन्या हो, अहो सुभगे! अनघे! सुश्रोणि देवि! मैं भी आज धन्य हूं; कारण हम दोनोंने आज त्रिजगत्पतिका साक्षात्कार लाभ किया है। यही धाता, विधाता, लोकसमूहके प्रभु, ईश्वर, अनादि, शान्त, शरण्य, परात्पर और परमात्मा हैं। यही सर्व्वज्ञ, सर्व्वयोगीश्वर, सर्व्वभूतैकभावन, सर्व्वभूतके अन्तरात्मा और सदा सबके सर्व्वाभीष्टदाता हैं। शान्त योगि-

गण तन्द्राहीन निरुद्धश्वास और ध्यानपरायण हो ज्ञानचक्षुसे जिनको हृदयमें देखते हैं, वही आज यहां आये हैं, निरीक्षण करो। जितेन्द्रिय वेदतत्त्वज्ञ योगिगण जिनको जानते हैं, वही सर्व्वव्यापी भगवान् अरूप होनेपर भी आज रूपवान् हो यहां आये हैं। अहो! भगवान् परमब्रह्मकी विचित्र लीला है! जिनका नाम कीर्त्तन करनेसे देह धारण नहीं करना पड़ता; वह आज देहधारी हैं। जिनका दर्शन करनेसे मनुष्यको पृथिवीमें पुनर्जन्म लेना नहीं पड़ता, वही शशिमौलि भगवान् त्रिलोचन यहां आये हैं। आज पद्मदल जैसा मेरे सुविशाल नयनद्वय सार्थक हुए, क्योंकि लीलारूपधारी भगवान्‌का दर्शन पाया है। देवताओंके देवत्वपदको धिक् है! जिन्हें भगवान् शङ्करका दर्शन करके भी सर्व्वदुःखहर निर्व्वाणपदलाभ नहीं होता। हे देवि! जगतमें देवत्वपद जैसा अशुभकर और कुछ भी नहीं है; क्योंकि सर्व्वदेवपतिका दर्शन करके भी मैं मुक्तिलाभ कर नहीं सकता। आनन्दपुलकित देहसे हृषिकेशने लक्ष्मीसे कहकर प्रणिपातपूर्व्वक वृषवाहन महादेवसे कहा, कि हे सर्व्वपापहर! विभो! आप अव्यय देवदेव हैं, सर्व्वज्ञ और त्रिजगत्‌के विधाता होनेपर भी आपका यह कैसे आचरण है? हे देवपते! महाद्युते! त्रिलोचन! आपकी कैसी लीला है? हे जरान्तक! विरूपाक्ष! आपके ऐसे आचरणोंका कारण क्या है? हे शक्तिपते! भगवन्! प्रभो! किसलिये भिक्षा करते हुए विचर रहे हैं? हे प्रणतजनके त्रैलोक्यराज्यप्रद! जगत्‌पते! इस विषयमें मुझे संशय उत्पन्न हुआ है। विष्णुकी यह बात सुन शम्भुने उनसे कहा, कि हे विष्णो! मैंने अङ्गुलीके नखाग्र द्वारा ब्रह्माका मस्तक छेदन किया था, उसी समयसे यह शुभव्रत धारण किया है। महेश्वरके ऐसा कहनेपर पुण्डरीकाक्ष विष्णुने अवनतमस्तक हो ईषत् हास्यकर फिर निवेदन किया, हे सर्व्वविज्ञाननायक! आप अपनी इच्छासे क्रीड़ा करिये, किन्तु हे महादेव! मायाबलसे मुझे आच्छन्न करना आपको उचित नहीं। हे ईश! आपके आदेशसे मैं नाभिपद्मकोषसे कल्प कल्पमें कोटि कोटि ब्रह्मा सृजन करता हूं। हे विभो! मूढ़गणकी अनुत्तरणीय इस मायाको त्याग करिये; हे महादेव! मैं और अपरापर सभी आपकी मायासे मोहित हैं; तो हे शिवापते! आपकी चेष्टासे यथायथ अवगत हो सकता हूं। हे हर! संहारकाल उपस्थित होनेपर आप जिस समय समस्त देवता, मुनि और वर्णाश्रमविशिष्ट लोगोंका संहार करेंगे, तब आपकी ब्रह्महत्या प्रभृति कहां रहेगी? हे प्रभो! आप किसीके भी परतन्त्र नहीं हैं, इसलिये आप यथेच्छ क्रीड़ा करते हैं। हे अनघ! कितने ही

ब्रह्माकी अस्थिमाला आपके कण्ठमें शोभित थीं, तब आपकी ब्रह्महत्या कहां थी? हे ईश! महापाप करके भी जो व्यक्ति आपको भक्तिपूर्व्वक स्मरण करते हैं, उनका पाप लीन होता है। जैसे सूर्य्यके निकट अन्धकार नहीं आ सकता, उसी तरह आपके भक्तोंका पाप, तत्चणात् नष्ट होता है। जो पुण्यवान् व्यक्ति आपके चरणयुगलका ध्यान करते हैं, उनका ब्रह्महत्याजनित पाप भी चय होता है। हे जगत्पते! जो व्यक्ति आपका नाम कीर्त्तन करते, उनका पाप निचय गिरिशृङ्ग-परिमित होनेपर भी उन्हें कष्ट देनेमें समर्थ नहीं है। हे लोक-जीवन! कहां रजोगुण और तमोगुण वर्द्धित परितापदायक पापराशि, कहां आपका जगद्व्यापक रोग-हारी मङ्गलमय शिवनाम? हे अन्धकरिपो! यदि कभी मनुष्यके उष्ठपुटसे 'शिव,' 'शङ्कर,' 'चन्द्र-शेखर'—आदि नाम बारंबार निकले, तो और संसारमें आना नहीं होता। हे ईश! आप परमात्मा हैं, परमज्योतिः और इच्छामूर्त्तिधारी हैं; यह सब आपके कौतूहल मात्र हैं, नहीं तो ईश्वरकी परा-धीनता कहां? हे देवेश! आज मैं धन्य हूं! योगिगण जिनका दर्शन नहीं पाते, उन्हीं अच्चय जगन्निनाद परमेश्वरका दर्शन मिला! आज मेरा परम लाभ और परम मङ्गल हुआ। आपके दर्शन-रूप अमृतसे परितृप्त हो स्वर्ग और मुक्ति पर्य्यन्त तृणज्ञान करता हूं। विष्णुके ऐसा कहनेपर स्वयं लक्ष्मीने महादेवके पात्रमें मनोरथवती नामक पवित्र भिक्षा प्रदान की। तब भैरवराज भी परमा-नन्दसे भिक्षाचरणके लिये वहांसे निर्गत हुए। जनार्द्दन विष्णुने, ब्रह्महत्याको उनके साथ जाते देख उन्हें बुला त्रिशू-लीको परित्याग करने कहा। इसपर ब्रह्महत्याने कहा, मैं इस विषयमें उपच्छ-जको सेवाकर आपको पवित्र करूंगी, नहीं तो महादेवका साक्षात्कार कहां पाऊंगी? कहकर ब्रह्महत्याने विष्णुकी प्रार्थना करनेपर भी उनका साथ न छोड़ा। फिर सहास्यमुख प्रभुने विष्णुसे कहा, हे बहुमानद गोविन्द! मैं तुम्हारे वाक्य सुधापानसे परितृप्त हुआ हूं, अतएव हे अनघ! मैं तुम्हें वर देता हूं, तुम वरकी प्रार्थना करो। भिक्षा करने जाकर भिक्षुकलोग सम्मान पानेसे जैसे सुखी और आनन्दित होते हैं, प्रचुर पवित्र भिक्षा-द्रव्य-लाभसे भी वह उतने आनन्दित नहीं होते। यह सुनकर विष्णुने कहा,—यही मेरा श्लाघनीय वर है, कि मैं मनोरथ-पथके सिवा देवगणके अधिपति देवदेवका दर्शन करता रहूं। हे हर! आपका दर्शन, स्पन्दनके लिये बिना मेघके अमृत-वृष्टि, बिना आयासके महोत्सव और बिना यत्नके निधिलाभके समान है। अतएव हे

देव प्रभो! आपके पादपद्मद्वयके और मेरे बीच कभी विच्छेद न हो, यही मेरी प्रार्थना है; और कोई वर मैं नहीं चाहता। तब श्रीभैरवने कहा,—"हे देव महामते! तुम जो चाहते हो, वही होगा और तुम सब देवगणके वरदाता होगे।" दैत्यारिकी इस वरदानसे अनुगृहीतकर कालभैरव, इन्द्रादिलोकमें भ्रमण करते हुए विधदाकर ब्रह्मादि देवगणका पद भी जिस काशीस्थित जीवगणके षोड़शभागका एक भाग नहीं है, उस मुक्तिदायिनी वाराणसी नगरीमें आये। वाराणसीमें जटाधारी मुण्डितमुण्ड और दिगम्बर होकर रहना भी अच्छा, किन्तु अन्यत्र एकछत्र ससागर धरामण्डलका अधीश्वर होकर रहना भी अच्छा नहीं। वाराणसीमें भिक्षा अवलम्बन करके रहना अच्छा, किन्तु अन्यत्र लक्षाधिपति होकर रहना अच्छा नहीं; कारण लक्षपतिको गर्भमें प्रवेश करना पड़ता है, किन्तु भिक्षान्नभोजीको गर्भयन्त्रणा नहीं सहना होती। काशीमें आमलकी फलपरिमित भिक्षा भिक्षुकोंको देनेसे वह सुमेरुतुल्य गुरु होती है। जो व्यक्ति दरिद्र गृहस्थको वर्षभोज्य अन्न प्रदान करते, वह जितने वर्षके लिये दान करते, उतने ही युग स्वर्गमें वास करते हैं। जो मनुष्य निरुपाय व्यक्तिको वर्षभोज्य दान करते हैं, उन्हें किसी कालमें क्षुधातृष्णा-जनित दुःख भोगना नहीं पड़ता। काशीमें वास करनेसे जो फल उत्पन्न होता, वहां किसी व्यक्तिको वास करानेसे भी निकल वही फल होता है। जिसका नाम लेनेसे ब्रह्महत्यादि पापसमूह पापीजनको त्याग करते हैं, उस काशीकी उपमा इस जगतमें किसके साथ दी जाय? इस तरह काशीक्षेत्रमें भीषणाकृति भैरवके प्रविष्ट होते ही ब्रह्महत्याने हाहाकार ध्वनिकर पातालमें प्रवेश किया। उनके हाथसे ब्रह्माका कपाल भूतलमें स्खलित हुआ। इससे भैरव सबके सामने परमानन्दसे नृत्य करने लगे। कालभैरवके नाना स्थानमें भ्रमण करनेपर भी उनके हाथसे कभी जो कपाल पतित नहीं हुआ था, काशीमें आते ही वह पतित हुआ और जिस ब्रह्महत्याने उन्हें कभी त्याग नहीं किया, वह क्षणकालमें विनष्ट हुई; अतएव काशी क्यों न दुर्लभ होगी? जो मनुष्य यावज्जीवन त्रिसन्ध्या "वाराणसी" "काशी" का महामन्त्र जपते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो मनुष्य दूरदेशान्तमें रहकर भी अविमुक्त महाक्षेत्रका नाम स्मरणकर प्राण त्यागते हैं, उनको भी दूसरी बार जन्म लेना नहीं पड़ता। जिनका चित्त सदा आनन्दकाननमें रत है, उस क्षेत्रका नाम सुननेसे उनको भी पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। जो मनुष्य पापसम्भार वहन करके भी निबतचित्तसे रुद्रावासमें सदा वास करते,

वह भी मुक्ति लाभ करते हैं। जो मनुष्य महाश्मशानमें आकर दैवात् मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनको फिर श्मशानमें शयन नहीं करना पड़ता। जो काशीस्थित कपालमोचन शिवका स्मरण करेंगे, उनके इस जन्म और पूर्व-पूर्वजन्मका पाप शीघ्र विनष्ट होता है। तीर्थप्रवर इस काशीमें आगमनकर यथाविधि स्नानपूर्व्वक पितृ और देवगणका तर्पण करनेसे लोगोंकी ब्रह्महत्या दूरीभूत होती है। जो देहादिको अनित्य समझ वाराणसीमें वास करते हैं, अन्तकालमें भगवान् शङ्कर उन्हें परमज्ञान प्रदान करते हैं। हे विप्र! यह काशीपुरी साक्षात् रुद्रदेवकी अनिर्व्वाच्य परमानन्द मूर्त्ति है और यह शिवद्वेषियोंको अप्राप्य है। इस काशीके तत्त्वको मैं और अत्यन्त शिवभक्त जानते हैं। इस स्थानमें, योगबलसे योगीकी तरह जीवगण बिना क्लेशके मुक्तिलाभ करते हैं। यह काशी ही परमपद, परमानन्द और परमज्ञान स्वरूप है; इसीलिये हो मोक्षार्थियोंकी सेव्य है। जो मनुष्य काशीमें वास करके भी शैवगणके विरुद्धाचरण करते या इस पुरीकी निन्दा करते हैं, उन्हें कहीं भी सद्गति नहीं मिलती। फिर कालभैरवने कपालमोचन तीर्थको भक्तगणकी पापराशि भक्षण करनेके लिये सामने अवस्थित किया। इन पापभक्षणकारी कालभैरवके पास जा उनकी सेवामें रत होनेसे, शत शत पाप करनेपर भी उसे भय कहाँ? यह पापराशि और दुष्टगणका मनोरथ सम्पूर्णभावसे मर्द्दन करते हैं, इसलिये इनका नाम आमर्द्दक हुआ है। काशी वासियोंके कलि और कालभयको निवारण करते, इसलिये कालभैरव नामसे विख्यात हुए हैं। इनके भक्तोंके पास निदारुण यमदूत नहीं आ सकते, इसलिये इनका नाम भैरव हुआ है। इन कालभैरवके निकट, अग्रहायण मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासी हो रात जागरण करनेसे, मनुष्य महापापसे मुक्तिलाभ करता है। इनका दर्शन करनेसे मनुष्यकृत समस्त अशुभ कर्म्म भस्मीभूत होते हैं। इन कालभैरवके पास जागरण करनेसे अनेक जन्म सञ्चित पापसमूह तत्क्षणात् विनष्ट होता है। मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको विविध उपचारसे इनकी पूजा करनेपर मनुष्योंके वर्षभरका पाप दूर होता है। रवि मङ्गलवारको अष्टमी और चतुर्द्दशी तिथिको कालभैरवकी यात्रा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्तिलाभ करता है। जो मूढ़ व्यक्ति सदा काशीवासी कालभैरवके भक्तोंका विघ्न आचरण करते, वह दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। जो जीवगण, विश्वेश्वरके भक्तिमान् हो कालभैरवके प्रति भक्ति नहीं करते, वह काशीमें पदपदपर बहुविघ्न प्राप्त होते हैं। कालोदक तीर्थमें स्नान, तर्पणकर कालराजका दर्शन करनेपर मनुष्य नरकसे पितृ-

पुरुषोंका उद्धार करते हैं। जो मनुष्य नित्य आठबार प्रदक्षिणा, करते हैं, वह वाङ्मनःकायसम्भूत पापमें लिप्त नहीं होते। साधक पुरुषोंके उस आमर्दकतीर्थमें छः महीनेतक इष्टदेवताका जप करनेसे भैरवाज्ञासे सिद्धिलाभ करते हैं। जो व्यक्ति वाराणसीवासी हो कालभैरवको नहीं भजते, उनका पाप शुक्लपक्षीय शशधरकी तरह दिन दिन वृद्धि पाता है। विविध बलि, पूजा और उपहार द्वारा कालभैरवकी पूजा करनेसे सर्व्वकामना सिद्ध होती है। काशीमें जो व्यक्ति प्रति चतुर्द्दशी, अष्टमी और मङ्गलबारको कालराजकी अर्चना नहीं करते, उनका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रकी तरह क्षयको प्राप्त होता है। ब्रह्महत्या नाशकारी भैरवोत्पत्ति नामक यह पवित्र इतिहास जो सुनेंगे, उनका सर्व्वपापमोचन होगा। जो मनुष्य इन भैरवकी प्रादुर्भाव कथा सुनेंगे, वह कारागारस्थित होनेपर भी सङ्कटसे मुक्त होते और कदापि विपन्न नहीं होते।

एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश अध्याय।

दण्डपाणि-प्रादुर्भाव।

अगस्त्यने कहा,—हे शिखिवाहन! अब हरिकेशकी उत्पत्तिकी कथा कहिये। वह हरिकेश कौन थे? किसके पुत्र थे, किस तरहकी कठोर तपस्या की थी और किस तरह वह महादेवके प्रिय हुए थे? यह महामति हरिकेश किस तरह काशीवासोंके हिताकाङ्क्षी दण्डनायक और अन्नदाता हुए थे? काशी-द्वेषी मनुष्योंके सदा भूमोत्पादनकारी सम्भ्रम और विभ्रम नामक गणद्वय किस प्रकार उनके अनुगत हुए? हे विभो! मेरी इच्छा है, कि यह सब सुनूं, कीर्त्तनकर मुझे अनुगृहीत कीजिये। स्कन्दने कहा,—हे ब्रह्मर्षि! कुम्भसम्भव! तुमने उत्तम ही प्रश्न किया है, इन दण्डपाणिकी कथा काशीवासियोंकी महाहितकारी है; इसके सुननेसे विश्वनाथकी कृपासे काशीवासका फल निर्व्विघ्न प्राप्त होता है। पूर्व्वकालमें गन्धमादन पर्व्वतपर सुकृती श्रीसम्पन्न रत्नभद्र नामक एक धार्म्मिक चूड़ामणि यक्ष वास करते थे। वह पूर्णभद्र नामक पुत्रलाभ कर पूर्णमनोरथ हुए थे। फिर वह यथाकाम विषयभोगकर चरम-वयसमें शान्तात्मा और प्रशान्तसर्व्वेन्द्रिय हो शैवयोगबलसे पार्थिव देह परित्यागकर शान्तिमय शिवत्वको प्राप्त हुए। फिर पिताके देहान्तपर महायशा पूर्णभद्रने पुण्यलभ्य अतुल विभवराशिके अधिकारी हो स्वर्गसाधन, गृहस्थआश्रमके भूषण, पितृलोगोंके परमपथ्य, संसारतापतप्त अङ्गके अमृतकणा और अनन्त क्लेशसागरके पतित मनुष्योंके पोतस्वरूप अपत्यलाभ भिन्न सब मनोरथको लाभ किया।

फिर पुत्रमुख अदर्शनसे, बालककी मधुरालापवर्ज्जित उनकी अट्टालिका सर्व्वजनदुर्लभ होनेपर भी उनके लिये अमङ्गलमय, दरिद्रहृदयकी तरह शून्य और प्रायः जीर्णारण्य बोध हुई और पथिकोंके लिये भी मानो प्रान्तरकी तरह सांय सांय करने लगी। हे कुम्भयोने! तब उन पूर्णभद्रने अतीव खिन्न हो यक्षिणीश्रेष्ठा कनककुण्डला नाम्नी गृहिणीको बुलाकर कहा,—प्रिये! मेरी यह अट्टालिका आदर्शतलकी तरह सुन्दर है। गवाक्ष मुक्तामय, प्राङ्गणभूमि चन्द्रकान्त पाषाणनिर्म्मित, गृहकुट्टिम पद्मराग और नीलकान्त मणिप्रभासे उद्भासित, स्तम्भ प्रवालखचित और दीवार स्फटिकमयी है। इसके ऊपर पताका फर फर स्वरसे फहरा रही है, चारो ओर मणिमाणिक्य शोभा पाते हैं और अगुरुधूपगन्धसे चारो ओर आमोदित हो रहा है। इसमें बहुमूल्य आसन, रमणीय पर्य्यङ्क, सुचारु अर्गल और कपाट, दुकूलाच्छादित मण्डप, सुरम्य रतिशाला वाजिशाला और शत शत दासदासी विराजमान हैं। इसमें कहीं किङ्किणी बजती है,—शिखिगणके नूपुररवसे उत्कण्ठित हो कैका रव कर रही है,—पारावतकुल कूजन करते हैं,—सारी-शुक गा रहे हैं,—मराल मिथुन खिलते हैं,—चकोरचकोरी नाच रही हैं और माल्यगन्धसे आकृष्ट भ्रमर मधर गुञ्जन कर रहे हैं। इसको चारो ओर कर्पूरवाससे सुवासित वायु बह रही है। इस अट्टालिकामें क्रीड़ामर्कटके दन्ताग्रभागमें माणिक्यमय दाड़िम्बफल शोभा पाते हैं और दाड़िमीबीजभ्रमसे शुकपक्षिगण चञ्चुपुटसे मुक्ता ले रहे हैं। अहो कान्ते! यह हर्म्य उत्तरूपसे सुखसम्पन्न, द्वितीय लक्ष्मीभवनकी तरह धनधान्यसमृद्ध यक्षगन्धसे आमोदित होनेपर भी सन्तान बिना मुझे सुखकर बोध नहीं होता। अहो कनककुण्डले! इस विषयमें यदि तुम्हें उपाय मालूम हो, तो कहो, कि किस तरह पुत्रमुख निरीक्षण कर सकूंगा। हाय! अपुत्रकका जीवन धिक् है! हे प्रियतमे! पुत्र न होनेसे इस घरका सभी शून्य बोध होता है। इस सौधसौन्दर्य्यको धिक् है, इस धनसञ्चयको धिक् है और हमलोगोंके जीवनको धिक् है। पतिको इस तरह ऊंचे स्वरसे विलाप करते देख, वह पतिव्रता यक्षिणी कनककुण्डला, अन्तःसे दीर्घ निश्वास त्यागकर उनसे कहने लगीं,—अग्निकान्त! आप ज्ञानवान् होकर भी किसलिये खेद करते हैं? यह पुत्रलाभका उपाय मैं कहती हूं! आप विश्वस्तभावसे सुनिये। इस चराचरमें उद्योगी पुरुषको दुर्लभ क्या है? ईश्वरको चित्त समर्पण करनेसे मनोरथ पहले ही सिद्ध होता है। हे कान्त! कापुरुषलोग ही दैवको कारण कहते हैं! किन्तु प्राक्तन कर्म्मके अतिरिक्त दैव एक स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। अतएव उन उन

कर्म्मप्राप्तिके लिये पुरुषकार अवलम्बनकर सब कारणोंके कारणस्वरूप ईश्वरके शरणागत होना ही मनुष्यको उचित है। हे प्रिय! शिवके प्रति जिनकी भक्ति है, उनके स्त्री, पुत्र, धन, अलङ्कार, हर्म्म्य, गज, अश्व, सुख, स्वर्ग और मोक्ष यह समस्त हस्तगत कहनेपर भी अत्युक्ति नहीं होती। अखिल मनोरथ और अणिमा प्रभृति अष्टविध सिद्धि, तो उनके गृहद्वारमें दण्डायमान हैं, इसमें सन्देह नहीं। अधिक क्या, सर्व्वान्तर्य्यामी भगवान् नारायण भी इन धूर्जटिकी सेवाकर चराचर जगत्के पालनकर्त्ता हुए हैं। भगवान् शम्भुने ही ब्रह्माको सृष्टिकर्त्ता किया है। इन महादेवकी ही कृपासे इन्द्रादि देवगण लोकपाल हुए हैं। शिलादमुनिने निःसन्तान होकर भी मृत्युञ्जय पुत्र लाभ किया। श्वेतकेतु कालपाशसे बंधकर भी इन्हींको अनुग्रहसे जीवित हुए थे और उपमन्युने क्षीरसमुद्रका आधिपत्य लाभ किया था। अन्धक नामक असुर इन्हींके प्रसादसे भृङ्गी हो गणपतिके पदको प्राप्त हुए थे। दधीचिमुनिने इन्हीं शम्भुको सेवाकर युद्धमें वासुदेवको परास्त किया था। दक्ष इन्हीं महेश्वरकी पूजाकर प्रजापति हुए। दृष्टिपथके पथिक होनेपर महादेव ही वाक्यके अतीत और मनोरथके अगोचर उस मोक्ष देके देनेमें समर्थ हैं। सब जीवोंके अभीष्टदाता इन महेश्वरकी आराधना न करनेसे कोई किसी जगह किसी तरहसे भी अभीष्ट लाभ कर नहीं सकता। अतएव, हे प्रिय! यदि तुम्हें सर्व्वजनका हितकारी प्रियपुत्र लाभ करनेकी वाञ्छा हो, तो सर्व्वान्तःकरणसे इन्हीं शिवके शरणागत हो। पत्नीकी ऐसी बात सुनकर सङ्गीतज्ञ यक्षराज एकाग्रचित्तसे गीतविद्या द्वारा आराधनाकर कई वर्षमें भगवान् नादेश्वरके प्रसादसे उन्हीं पत्नीके गर्भसे उस पुत्रकामना प्राप्तकर सफलमनोरथ हुए। काशीमें नादेश्वर शिवकी उपासना करनेसे, कौन ऐसा व्यक्ति है, जो किसी अभीष्टको प्राप्त न हो? अतएव मनुष्यको भगवान् नादेश्वरकी सर्व्वप्रयत्नसे सेवा करना उचित है। हे द्विज! फिर कालक्रमसे उनकी पत्नीने गर्भवती हो पुत्र प्रसव किया। पिता पूर्णभद्रने उस पुत्रका नाम "हरिकेश" रखा। हे अगस्त्य! पूर्णभद्रने उन पुत्रका मुखदर्शनकर प्रफुल्ल हो बहुत धन वितरण किया और कनककुण्डला भी परमानन्दित हुई। मदनसुन्दर पूर्णचन्द्रानन वह बालक भी शुक्लपक्षके चन्द्रकी तरह प्रति क्षण वृद्धि पाने लगे। इस तरह आठ वर्षके होते होते वह शिवके सिवा और कुछ भी नहीं जानते;—पांशुक्रीड़ाके समय धूलिमय शिव निर्म्माणकर दूर्व्वाराजि द्वारा अति कौतुकसे उनकी पूजा करते; अपने वयस्यवालकोंको चन्द्रशेखर, भूतेश, मृत्युञ्जय, मृड़, ईश्वर, धूर्ज-

टि, खण्डपरशु, मृड़ानीश, त्रिलोचन, भर्ग, शम्भु, पशुपति, पिनाकी, उग्र, शङ्कर, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, ईश, स्मरारि पार्व्वती-प्रिय, कपाली, भालनयन, शूलपाणि, महेश्वर, अजिनाम्बर, दिग्वास, सर्धुनी-क्लिन्नमूर्द्धज, विरूपाक्ष और अहिनेपथ्य आदि शिवके नामसे वारंवार बुलाते थे। वह कानसे महादेवके सिवा और शब्द नहीं सुनते थे। उनके पदद्वय शिवमन्दिरके सिवा और कहीं नहीं जाते थे। उनके नयनयुगल रूपान्तर न देखते; रसना हरनामामृत सेवन करती थी। उनकी घ्राण, हरपादपद्मभिन्न दूसरा सुगन्ध आघ्राण न करती; उन्होंके कौतुककार्य्यमें नियत व्याप्त रहती; मन और किसीको नहीं जानता था। वह भक्ष्य और पेयद्रव्य महादेवको निवेदनकर खाते पीते थे। वह सभी अवस्थामें जगत्को शिवमय देखते थे;—गाना, जाना, शयन, स्वप्न, उपवेशन, खाना, पीना,—सब समय ही त्रिलोचनको निरीक्षण करते थे; और भाव नहीं ग्रहण करते थे। रातमें निद्रित हो, "हे त्रिनयन! कहां जाते हैं, क्षणकाल प्रतीक्षा करिये" कहते कहते सहसा जाग उठते। उनके पिता पूर्णभद्र पुत्रकी ऐसी चेष्टा स्पष्ट देख उन्हें उप-देश करने लगे,—वत्स हरिकेश! तुम गृहकर्म्ममें रत हो। यह घोटक घोटकी, विचित्र वस्त्र दुकूल, आकरशुद्ध नानाजा-तीय रत्न, स्वर्णरौप्यादि बहुविध धन, महा-मूल्य रौप्य कांस्यमय पात्र, नानादेशीय पण्यद्रव्य, विचित्र चामर, नाना गन्धद्रव्य—यह सब और जो परिमित धान्यराशि देखते हो—सभी तुम्हारा है। हे पुत्र! तुम धनार्ज्जन विद्या सीखो। धूलिधूस-रिततनु दरिद्रोंकी चेष्टाको परित्याग करो। फिर तुम सब विद्याका अभ्यास करके उत्तम भोगसुखसे दिन यापन करते हुए वृद्धवय-समें भक्तियोग अवलम्बन करना।" इस तरह बार बार पिता उन्हें शिक्षा देने लगे सही, किन्तु हरिकेशने कुछ न सुना। एक दिन वह महामति बालक पिताकी पद पदमें दोषदर्शी देख स्नानकर गृहसे निर्गत हुए। जाते जाते उन्हें दिग्भ्रम हुआ; तब सोचने लगे, कि हाय! क्यों मैंने मूढ़ बुद्धिवश गृह त्याग किया! कहां जाता हूं, कहां जाना मुझे श्रेय है, हे शम्भो! मुझे बताओ; मैं इस समय पितृ-परित्यक्त हूं,—कुछ भी नहीं जानता। एक दिन पहले मैं पिताकी गोदमें उप-विष्ट था, उस समय किसी साधु पुरुषके मुखसे आलापप्रसङ्गसे सुना था, कि पिता और बन्धुबान्धवगणने जिन लोगोंको परि-त्याग किया है, उन लोगोंकी गति सिवा वाराणसीके और कहीं नहीं है। जरा-क्रान्त व्याधिविकलित अनन्यगति मनुष्योंकी वाराणसीके सिवा और कहीं भी गति नहीं है। जो पद पदमें विपद्से अभिभूत

पापराशिसे आक्रान्त, दारिद्रदलित, संसारभयसे भीत, कर्म्मबन्धनसे बद्ध, श्रुति-स्मृतिहीन, शौचाचारवर्ज्जित योगभ्रष्ट, तपो-दानविरहित हैं, उन लोगोंकी गति और कहीं नहीं है;—बाराणसी ही एकमात्र गति है। बन्धुजनमें जिनका पद पदपर अपमान होता है, विश्वेश्वरका आनन्द-कानन ही उनका एकमात्र आनन्दधाम है। कारण उस जगह वास करनेपर विश्वना-थके अनुग्रहसे सदा आनन्दभोग ही होता है। उस महाश्मशानमें रहनेसे महेश्वरा-नलसे कर्म्म-बीज समुदाय भस्मीभूत हो जाता है, इस लिये ही वह अगतिकी परम गति है। बालक हरिकेशने इस तरह मन ही मन विचारकर, जहां शिवप्रसादसे पार्थिवतनु त्याग करनेपर फिर देहसम्बन्ध नहीं होता, उसी आनन्दवन अविमुक्तक्षेत्र बाराणसीमें जा तपस्या आरम्भ की। इसके उपरान्त कुछ काल बीतनेपर एक दिन भगवान् शम्भु, आनन्दकाननमें प्रवेशकर पार्व्वतीको अपना उत्तम उद्यान दिखाने लगे,—देखो, देखो प्रिये! कैसी उद्यानकी शोभा है! इस उद्यानमें मन्दार, मालती, गन्धमल्लिका, चूत, चम्पक, करवीर, केतकी बकुल, कुरुवक, पाटल और पुन्नाग विक-सित हो कैसा दशदिक् आमोदित कर रहे हैं! इस नवमालिकाके परिमलसौरभमें आनन्दित भ्रमरगण गुञ्जन कर रहे हैं। किसी जगह दोलस्थमाला मालाकार भूत-लमें लम्बमान हुआ है। इस चञ्चल चन्दनवृक्षके शाखाग्रमें कोकिलकुल कलरव करते हैं। इस विशाल अगुरुवृक्षमें उत्कृष्ट-जातीय पक्षिगण मदमत्तभावसे बैठे हैं! इस नागकेशर शाखापर शाल-भञ्जिका चतुर्व्विनोदन करते हैं। उस रुद्राक्ष-वृक्षके छायातलमें किन्नर क्रीड़ा करते हैं, किन्नरीमिथुन गान्धारस्वरमें गा रही हैं। उस किंशुक-शाखापर शुकगण गानेमें मत्त हैं। उस कदम्बतरु निकरमें भ्रमरगण गुञ्जनमें रत हैं। यह सुवर्णवर्ण कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, हिन्ताल और लकुचराजि विराज रहे हैं। दाड़ि-मीफल विदीर्ण हो रहा है। लवलीलता, कदलीदल वायुसे आन्दोलित हो रहा है। सप्तच्छदके आमोदसे चतुर्द्दिक् आमोदित है। यह खर्ज्जूर, नारियल, जम्बीर, नारङ्ग, मधूक, शाल्मली, पिचुमर्द्द और मदन-वृक्षश्रेणी शोभा दे रही हैं। भील-रमणियोंकी गीतध्वनिकी तरह झिल्लीरव सुनाई देता है। उस सरोवरमें वराहदल क्रीड़ा करते हैं। वह मराल मरालीके गलनालोच्छित मृणालकी अभिलाष करते हैं। आनन्दमत्त चक्रवाकमिथुन क्रेङ्काका रव करते हैं। वकशावक चर रहे हैं, सार-ससारसी क्रीड़ा करती हैं। मत्तमयूरगण केकारवसे बुला रहे हैं। कारण्डव, कपि-ञ्जल और जीवञ्जीव-कुलके निनादसे दिक् निनादित हो रहे हैं। दीर्घिकाजलसञ्चारी

शीतल मारुत इसे बीजन कर रहा है। मृदुमन्द वायुसे आन्दोलित हो कह्लारकुसुम-परागने इसका चतुर्दिक् पिङ्गलवर्ण किया है। इस उद्यानका—विकसित पद्म ही मानो वदनमण्डल है, नील इन्दीवर ही, मानो नयन हैं, तमालतरु ही मानो कवरी भार है, स्फुटितदाड़िम ही मानो दशन हैं, भ्रमर मानो नील कुटिल भ्रूरेखा हैं, शुकनासा ही मानो निज नासा और विशाल कूप ही मानो श्रवणरूपसे शोभा पाता है। कमलपुष्पका आमोद इसका निश्वासस्थलाभिषिक्त है। बिम्बफल इसके उष्ठाधररूपसे विराजमान हैं। सुन्दर पद्मदल इसके रसनायमान, कर्णिका इसके भूषणायमान, कमनीय कम्बल इसके कण्ठायमान और वितुन्नक वृक्ष इसके स्कन्ध की तरह जान पड़ता है। चन्दनवृक्षस्थित सर्पराज इस उद्यानके बाहुदण्डकी तरह, अशोक पल्लव आदि इसकी उङ्गलीकी तरह, कैतकीपुष्प इसके नखकी तरह और दुर्द्धर्ष सिंह ही इसके वक्षःस्थलकी तरह बोध होता है। देखो, इस गण्डशैलने इसके उदरकी शोभा धारण की है, यह शलिलावर्त्त, नाभिकी तरह दिखाई देता है। यह वटवृक्ष जङ्घायुगलकी तरह बोध होता है। स्थलपद्म चरणस्थानीय है, देखो, इस मत्तमातङ्गसे इसकी गति प्रकाश होती है। यह बारशोदल ही चौमांशुकका काम करता है। नाना पुष्पमाला ही इसकी माला हो रही है। इस उद्यानमें कण्टकी वृक्ष नहीं है। हिंस्र जन्तुगण हिंसा त्यागकर इधर उधर घूम रहे हैं। चन्द्रकान्तशिलासे उपविष्ट कृष्णसार मानो मृगलाञ्छनका उपहास करता है। वृक्षके नीचे कुसुमराशि विकीर्ण होनेसे स्वर्गके तारे भी लज्जित हो रहे हैं। इसी तरह उद्यान-भूमि देवीको दिखाते दिखाते देवदेव वनमें प्रविष्ट हुए। देवदेवने कहा;—अयी सर्व्वसुन्दरि, देखि; यह जो आनन्दकानन देखती हो, यह मेरे प्रियता-विषयमें तुम्हारो अपेक्षा कुछ अंश भी न्यून नहीं है। इस जगह मरनेसे मेरी अनुग्रहसे जीवकी देह मुक्त होती है, और संसारमें फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। मेरी आज्ञासे इस श्मशानकी प्रज्वलित अग्नि उन लोगोंका कर्म्मबीज भस्मात् करती है। हे गिरिराजसुते! इस महाश्मशानमें जो कोई मरता है, उसे फिर गर्भयन्त्रणा सहना नहीं पड़ती। मुक्तिलाभ तत्त्वज्ञान सापेक्ष है;—प्राण हो या तत्त्वज्ञानका हेतु यह काशी हो, सब जगह ही तत्त्वज्ञान बिना मुक्तिलाभ नहीं होता। मैं इसीलिये काशीवासियोंको चरमकालमें तत्त्वज्ञानका उपदेश देता हूं, उस तत्त्वज्ञानके बलसे ही वह मोक्षलाभमें समर्थ हैं। जो काशीमें मरनेवालोंकी निन्दा करते हैं, वह पाप लेते और स्तुतिकारी जन पुण्यग्रहण करते

और इस जगह देह त्यागकर मुक्ति-प्राप्त होते हैं। हे देवि! कलिप्रभावसे मलिनबुद्धि और स्वभावतः चञ्चलेन्द्रिय मनुष्यको ब्रह्मज्ञान सम्भावना न देख मैं इस जगह उन्हें उपदेश देता हूं। योगिगण ऐश्वर्यलुब्ध होनेपर योगभ्रष्ट हो पतित होते हैं, किन्तु काशीमें पतित व्यक्तिको संसारमें और पतित होना नहीं पड़ता। बहुयोगसाधनसे एक जन्ममें तत्त्वज्ञान लाभ नहीं होता, किन्तु काशीमें देहान्त होनेसे एक ही जन्ममें मुक्ति मिलती है। हे गिरजे! जीव जिस तरह मेरी अनुग्रहसे इस अविमुक्त महाशिवमें मुक्ति पाते हैं, ऐसा और कहीं नहीं है। योगी बहुजन्म धारणकर योगाभ्याससे मुक्ति पाते अथवा नहीं भी पाते हैं; किन्तु काशीमें जीव, मरनेसे ही एकजन्ममें मुक्ति पाते हैं। कलिकालमें योग या तपस्या-सिद्धि नहीं होती, केवल न्यायपूर्व्वक अर्ज्जित-धन दानसे ही सद्यः परम सिद्धि होती है। जप, यज्ञ, व्रत, तपस्या और देवपूजा मुक्तिका साधन नहीं है; एकमात्र दान ही मुक्तिका कारण है; कारण उससे काशी मिलती है। कलिकालमें विप्र प्रवर ही एकमात्र देवता हैं, वाराणसी ही एकमात्र मोक्षनगरी है, भागीरथी ही एकमात्र पुण्यप्रवाहिणी और दान ही एकमात्र विशिष्ट धर्म है। हे देवि! इस कालमें काशीस्थित उत्तरवाहिणी गङ्गा और मेरा विश्वेश्वरलिङ्ग—मुक्तिके यह दोनो कारण दानबलसे प्राप्त होते हैं। मेरे इस क्षेत्रकी सेवा करनेसे पुण्यवान् या पापी निश्चय ही मुक्ति लाभ करते हैं। उनका शतजन्मार्ज्जित पापपुण्य इस क्षेत्रके माहात्म्यपर कोई प्रभाव प्रकाश कर नहीं सकता। अतएव शत शत विघ्न-बाधासे आक्रान्त होकर भी मुमुक्षुजनको इसका त्याग करना उचित नहीं है। देवि! क्षेत्रसन्यासकर जो इस जगह वास करते, वह जीवन्मुक्त हैं, मैं उन लोगोंका विघ्नहरणकारी हूं। काशीके प्रति मेरा जितना अनुराग है; योगिगणके हृदयाकाशमें, कैलास या मन्दरपर्व्वतमें उतना अनुराग नहीं है। देवि! काशीवासी मनुष्य सदा मेरे ही गर्भमें वास करते हैं, अतएव अन्तकालमें मैं उन लोगोंका मोचन करता हूं; कारण यही मेरी प्रतिज्ञा है। देवि! मैं प्रलयकालमें तामसप्रकृतिके साहाय्यसे कालमूर्त्ति धर लीलाक्रमसे चराचर ग्रास करता हूं, किन्तु यत्न पूर्व्वक काशीकी रक्षा करता हूं। देवि! तपोधने! तुम और यह आनन्द-भूमि काशी—यह दोनो ही मेरे नितान्त प्रेमपात्र हैं। मैं सत्य कहता हूं,—मुझे काशी बिना कोई स्थान ही नहीं है; काशीके सिवा कहीं मुझे अनुराग नहीं है; काशीके सिवा किसी जगह मुक्ति नहीं है। इस ब्रह्माण्डमें काशीमें अवलीलाक्रमसे जैसी मुक्ति अवस्थित है, और जगह अष्टाङ्ग-

योगसे भी नहीं मिलती। देवदेवने देवीसे इस प्रकार कहते कहते वनमें अशोकतरुके नीचे देखा,—हरिकेश, निवातनिष्कम्प शरीरसे तपस्या कर रहे हैं। उनका स्नायु शुष्क और उसमें अस्थिचय आच्छादित हो रहा था; मांस, शोणित, वसा, वल्मीक-कीटने शोषण किया है; अस्थिमें मांस नहीं है, शङ्ख, कुन्द, इन्दु, तुहिन और महाशङ्खकी तरह सब शुभ्रवर्ण हो गया है; प्राणवायुकी सत्त्वगुणने धर रखा है; आयुःशेष ही जीवन रक्षा करती है। श्वासप्रवास क्रियासे उन्हें जीवन उपलब्ध होता है; निमेष-उन्मेषसञ्चारसे ऐसा अनुमान होता है, कि जीव है; पिङ्गलताराशोभितनेत्रकी उज्ज्वल ज्योतिसे दिक् उज्ज्वलित हो रहा है। उनके तपस्यानलके शिखास्पर्शसे कानन-भूमि श्याम और सौम्यदृष्टिसुधावर्षणासे निखिल वृक्ष सिक्त हो गये हैं। उनको देखनेसे बोध होता है, कि निराकार निराकाङ्क्ष साक्षात् तपस्या ही मानो किसी आकाङ्क्षासे मनुष्य आकार धारणकर तपस्या करती हैं। उनकी चारोंओर दलके दल कुरङ्गशावक घूम रहे हैं और केशरिगण नितान्त भीषणमुखसे चारोंओर रक्षा करते हैं। तब देवीने उनकी यह अवस्था देख देवदेवसे कहा,—हे देव! यह यक्ष आपमें ही चित्त, जीवन और का..न समर्पणकर तीव्र-तपस्यासे देह शोषण करके आपके शरणागत हुए हैं; अतएव निजभक्त इस तपस्वीको वर दे अनुग्रह प्रकाश करिये। सुनकर महादेवने नन्दीका हाथ पकड़ पार्वती सहित वृषवाहनसे उतरकर, सदयचित्तसे ध्यान निमग्ननेत्र उन हरिकेशको हाथ द्वारा स्पर्श किया। तब यक्ष नेत्र खोल उदयादित्यसन्निभ भगवान् त्रिलोचनको सामने देखकर आनन्दगद्गद स्वरसे कहने लगे,—हे देव! शम्भो! गिरिजेश! शङ्कर! त्रिशूलपाणे! शशिखण्डशेखर! आपकी जय हो। हे कृपालो! आपके करकमलस्पर्शसे मेरी देह सुशीतल हुई। धीर, महातपस्वी उन भक्तकी ऐसी सरलतापूर्ण मधुर बात सुनकर भगवान् महेश्वरने आनन्दसे अपर्थ्याप्त वर प्रदानकर कहा,—हे यक्ष! मेरे वरसे तुम मेरे इस प्रिय क्षेत्रके दण्डधर हुए, तुम आजसे इस जगह स्थिर रह दुष्टका दमन और शिष्टका पालन करोगे। तुम्हारा नाम "दण्डपाणि" हुआ; यह समस्त उत्कटगण तुम्हारे शासनमें रहेंगे; मनुष्योंमें यथार्थ नामधारी सम्भ्रम और उद्भ्रम नामक गणद्वय सदा तुम्हारा अनुसरण करेंगे। तुम काशीवासियोंके गलेमें नीलरेखा, करमें भुजगकङ्कण, कपालमें नयन, परिधानमें कृत्तिवास, वृषवाहनमें गमन, वामभागमें वामनयना, मस्तकमें पिङ्गल जटाजूट, सर्व्वाङ्गमें भस्म और चन्द्रकला विधानकर अन्तिमकालका भूषा सम्पादन करोगे। तुम काशी-

वासियोंके अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता और मझु खनिर्गत उपदेशामृतसे मुक्तिदाता हो उनको अचल सत्त्वमति विधान करोगे। हे पिङ्गल! तुम पापियोंको बहुत विघ्न प्रदानकर भ्रान्ति उत्पादनकर क्षेत्रसे विताड़ित करोगे और भक्तोंको चणमें दूरदूरान्तरसे लाकर मुक्तिप्रदान कराओगे। हे यक्षराज! यह सम्पूर्ण क्षेत्र तुम्हारे अधीन हुआ, यहां मेरे भक्तमात्र आगे तुम्हारी पूजाकर तब मेरी अर्च्चना करेंगे; नहीं तो मुक्ति न मिलेगी। हे दण्डनायक! तुम इस पुरीके अन्नवस्त्रदाता हो, त्रिलोचन होके रहोगे और काशीके शत्रु दुष्टलोगोंका उच्चाटनकर सदानन्दसे इस पुरीकी रक्षा करोगे। हे पूर्णभद्रात्मज! तुम्हारा मनोरथ-तरु फलित होगा; भक्ति विषयमें तुम ब्रह्मादि देवगणके भी उदाहरणपात्र होगे। हे पूर्णभद्रसुत! दण्डनायक! पिङ्गल! यक्ष! यक्ष! हरिकेश! हे काशीवासियोंके अन्नज्ञानमोक्षदाता! तुम मेरे सब गणके प्रधान होगे। मुझमें भक्तियुक्त होनेपर भी मनुष्य तुम्हारी भक्ति बिना काशीमें वास न करने पावेंगे। तुम देव, मनुष्य, प्रमथसे आगे पूजनीय होगे। ज्ञानवापी-तीर्थमें स्नानादिकर जो तुम्हारी आराधना करेंगे, वह मेरी सामान्य कृपाके बलसे पूर्णमनोरथ होंगे। हे दण्डपाणे! तुम मेरे सामने दक्षिण और दुष्टको दण्डविधान और शिष्टको अभय दान करते हुए अवस्थान करो। स्कन्दने कहा,—हे विप्र! भगवान् गिरीश दण्डपाणिको ऐसा वर दे वृषराजपर चढ़ आनन्दकाननको गये। तबसे यक्षराज दण्डनायक, दुष्टोंसे वाराणसी पुरीका यथाविधि पालन करते हैं। मैंने उनके मर्य्यादाकी रक्षा नहीं, की इसलिये उनके कोपसे यहां वास करता हूं। हे मुने! मैं समझता हूं, तुम भी उनकी प्रतिकूलतासे काशीक्षेत्र त्याग करनेपर वाध्य हुए हो। हे द्विज! हरिकेश यदि किसी मनुष्यका अल्पमात्र भी व्यतिक्रम देखते हैं, तो काशीमें उसका रहना और भाग्यमें सुख अति दुर्घट है। दण्डपाणिकी आराधना न करनेसे किसी तरह भी काशीमें सुखप्राप्तिकी सम्भावना नहीं है मैं काशीसें जानेके पहले ही इस तरह उनको भजता हूं, "हे रत्नभद्रसुतपूर्णभद्रपुत्रश्रेष्ठ! यक्ष! शिवप्राप्तिके लिये निर्व्विघ्न मेरा काशीवास विधान करिये। यक्ष पूर्णभद्र धन्य हैं; काञ्चनकुण्डला भी धन्या हैं; हे महामते! जिनके जठरमें तुमने (दण्डपाणिने) जन्म ग्रहण किया है। हे यक्षपते! तुम्हारी जय हो। हे पिङ्गललोचन वीर तुम्हारी जय हो; हे पिङ्गजटाभार! दण्डमहायुद्ध! तुम्हारी जय हो। हे अविमुक्त महाक्षेत्रके सूत्रधर! उग्रतापस! हे दण्डनायक! भीषास्य! हे विश्वेश्वरप्रिय! तुम्हारी जय हो, हे सौम्यके प्रति सौम्य! हे भीष-

णाके प्रति भीषण ! हे क्षेत्रस्थ पापचारीके कालान्तक ! हे महामहाप्रिय ! हे प्राणद ! हे यतीन्द्र ! हे काशीवासियोंके अन्न और मुक्तिदायिन् तुम्हारी जय हो। हे महारत्नरश्मिमाला स्फुरितविग्रह ! हे अभक्तगणके महासम्भ्रान्तिजनक और महोद्भ्रान्तिप्रदायक ! हे भक्तगणके सम्भ्रमोद्भ्रान्तिनाशक ! हे चरमकालीन भूषाचतुर ! हे ज्ञाननिधिप्रद ! तुम्हारी जय हो। हे गौरीचरणसरोजमधुप ! मोक्षदानैकविचक्षण तुम्हारी जय हो।" काशीलाभके लिये यह पवित्र यक्षराजाष्टक मैं नित्य त्रिसन्ध्या पाठ करता हूं। हे मैत्रावरुणि ! जो बुद्धिमान् मनुष्य इन दण्डपाणिके अष्टकको पढ़ेंगे, वह कभी विघ्नजातसे आक्रान्त न होंगे, और काशीवासका फल पावेंगे। यह दण्डपाणिकी प्रादुर्भाव कथा सुनने या पढ़नेसे यदि इस जन्ममें न हो, तो दूसरे जन्ममें काशीलाभ होगा। यह पवित्र दण्डपाणिप्रादुर्भाव नामक अध्यायका जो व्यक्ति पाठ करते या कराते हैं, उन्हें विघ्नबाधासे आक्रान्त नहीं होना पड़ता।

द्वात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश अध्याय।

ज्ञानवापी-वर्णन।

अगस्त्यने कहा,—हे स्कन्द! स्वर्गवासी देवगण भी ज्ञानवापीकी हृदसे ऊपर प्रशंसा करते हैं, अतएव सम्प्रति उस ज्ञानोद तीर्थकी महिमा कहिये। तब स्कन्दने कहा,—हे मुने महाप्राज्ञ कुम्भयोने! मैं इस समय उसकी कलुषनाशिनी उत्पत्तिकी कथा कहता हूं, सुनो। हे मुने! पहले जब देवयुगमें इस आवहमान संसारमें मेघ वृष्टि नहीं करता था; नदियोंकी उत्पत्ति नहीं थी; स्नानदानादि कार्य्यमें जलकी जरूरत नहीं थी; लवण और क्षीरसमुद्रमें केवल जल दिखाई देता और पृथिवीकी किसी किसी जगह मनुष्यसञ्चार वर्त्तमान था, ऐसे समय दिक्पाल ईशान अपनी इच्छासे इधर उधर विचरण करते करते समस्त कर्म्मबीज ऊषरक्षेत्र, महानिद्रामें निद्रित जीवगणके प्रतिबोधक, संसारसमुद्रावर्त्तमें पतित जन्तुकी अवलम्बनतरणी, यातायातके खिन्नजीवके विश्रामभवन, बहुजन्मसञ्चित कर्म्मसूत्रके छेदनशस्त्र, निर्व्वाणलक्ष्मीधाम, सच्चिदानन्दनिलय, परब्रह्मरसायन, सुखसन्तानजनक और मोक्षसाधन सिद्धिप्रद महाश्मशान श्रीआनन्दकाननमें आये। वहां आकर जटिल ईशानने त्रिशूलके विमल रश्मिजालसे आकुल हो देखा, ब्रह्मा और विष्णुके अहमहमिकामें प्रादुर्भूत ज्योतिर्मालामण्डित महालिङ्ग विराजमान हैं। अमर, सिद्ध, योगी, ऋषि और प्रमथगण निरन्तर उनकी अर्चना करते हैं। गन्धर्व्व गा रहे हैं, चारणगण स्तव करते हैं; अप्सरा नाच

रही हैं; नागकन्या मणिमय प्रदीप जलाकर नीराजना करती हैं; विद्याधरवधू और किन्नरीगण त्रिकालीन मङ्गल करती हैं और देवनारीगण इधर उधर चामर व्यजन करती हैं। उस समय उन लिङ्गको देखकर ईशानकी इच्छा हुई, कि मैं कलस द्वारा शीतल जलसे इन महालिङ्गको स्नान कराऊंगा। तब रुद्रमूर्त्ति ईशानने त्रिशूल द्वारा दक्षिण भागमें कुछ दूर एक कुण्ड खोदा। हे मुने! उस समय इस कुण्डसे पृथिवीके परिमाणकी अपेक्षा दशगुण अधिक जल निकला। उस जलसे यह वसुधा आवृत हो पड़ी। हे कुम्भयोने! तब उन ईशानने, जीवोंके असृश्य, सज्जनचित्तकी तरह स्वच्छ, आकाश मार्गकी तरह ऊंचा, ज्योत्स्नाकी तरह धवल, शिवनामकी तरह पवित्र, अमृतवत् सुस्वादु, वृषाङ्कको तरह सुखस्पर्श, निष्पाप-जनकी तरह धीर गम्भीर, पापियोंकी तरह चञ्चल, निर्ज्जितपद्मगन्ध, पाटलपुष्पगन्धि, दर्शकवृन्दके नयनमनोहारी, अज्ञानतापतप्त जीवका स्निग्धताकारी, पञ्चामृत स्नानकी अपेक्षा अति फलदायी, श्रद्धापूर्व्वक स्पर्श करनेसे हृदयमें लिङ्गत्रितयका जनक, अज्ञानतिमिरके सूर्य्य समान, ज्ञानदानके निदान, उमास्पर्शकी अपेक्षा विश्वेश्वरके अति सुखकारी अवभृत स्नानसे भी अति शुद्धिविधायक, शीतल, जाड्यापहारी उस जल द्वारा सहस्र धारा कलसमें लेकर हृष्टचित्तसे सहस्र बार उन लिङ्गको स्नान कराया। फिर विश्वलोचन विश्वात्मा भगवान्‌ने प्रसन्न हो रुद्रमूर्त्तिधारी ईशानसे कहा,—हे सुव्रत ईशान! अति प्रीतिकर, औरोंसे गुरुतर तुम्हारे इस कार्य्यसे मैं प्रसन्न हुआ हूं; तुम क्या वर चाहते हो, बोलो, तुम्हारे लिये अदेय मेरा कुछ भी नहीं है। यह सुनकर ईशानने कहा,—"हे देवेश! यदि प्रसन्न हुए हैं और मैं यदि आपके वरलाभके योग्यपात्रोंमें गण्य हूं, तो हे शङ्कर! यह तीर्थ अतुलनीय और आपके नामसे प्रसिद्ध हो।" विश्वेश्वरने कहा, त्रिभुवन और भूर्भुवःस्वर्लोकमें जितने तीर्थ हैं, उन सभोंमें यह प्रधान और शिवतीर्थ नामसे विख्यात होगा। शिवशब्दार्थज्ञ पण्डितगण शिवशब्दका अर्थ "ज्ञान" कहते हैं, इस तीर्थमें वह ज्ञान मेरे महिमबलसे सलिलभावसे द्रवीभूत हुआ है, अतएव यह तीर्थ "ज्ञानोद" नामसे त्रिलोकमें विख्यात हुआ! इसके दर्शनसे सर्व्वपाप मोचन, स्पर्शनसे अश्वमेधका फल लाभ और आचमन और स्पर्शनसे अश्वमेधका फललाभ और आचमन स्पर्शनसे राजसूय और अश्वमेधका फल प्राप्त होगा। फल्गुतीर्थमें स्नान और पितृतर्पण करनेसे मनुष्यको जो फल होता है, इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे, वही फल होगा। गुरुबार पुष्यानक्षत्रयुक्त शुक्लपक्षीय अष्टमीको व्यतीपात योग होनेपर यदि कोई

इस तीर्थमें श्राद्ध करें, तो वह गया श्राद्धकी अपेक्षा कोटिगुण फल लाभ करेंगे। पुष्करतीर्थमें पितृतर्पणसे जो पुण्य होता है, इस तीर्थमें तिलतर्पणसे उसकी अपेक्षा कोटिगुण पुण्य होगा। कुरुक्षेत्रके रामह्रदमें सूर्य्यग्रहणके समय पिण्डदानसे जो फल होता है, इस तीर्थमें प्रत्यह वही फल लाभ होगा। जिनके पुत्र इस जगह पिण्डदान करेंगे, वह प्रलयकालमें यावत् शिवलोकमें वास करेंगे। अष्टमी और चतुर्द्दशीको उपवासकर इस तीर्थमें प्रातःस्नान और इसका जलपान करनेसे, मनुष्यका हृदय शिवमय होगा। जो एकादशीको उपवासकर इसका तीन गण्डुष जल पान करें, निश्चय ही उनके हृदयमें शिवलिङ्गत्रय उत्पन्न होंगे। विशेषतः सोमवारको जो व्यक्ति इस शिवतीर्थमें स्नान और ऋषि, देव, पितृतर्पणकर यथासाध्य दान दे षोड़शोपचारसे विश्वेश्वरकी पूजा करेंगे, उनका मनोरथ पूर्ण होगा। यथासमय सन्ध्या न करनेसे जो पाप होता है, इस तीर्थमें सन्ध्योपासना करनेसे वह पाप तत्क्षणात् नष्ट होगा और ब्राह्मण ज्ञान लाभ करेंगे। इसका नाम शिवतीर्थ है, यही शुभज्ञानतीर्थ है, इसीका नाम तारकतीर्थ और यह निःसन्देह मोक्षतीर्थ हुआ। इस तीर्थका स्मरण करनेसे भी पापराशि विनष्ट होगी, इसका दर्शन, स्पर्शन, जलपान और इसमें स्नान करनेसे मनुष्य चतुर्व्वर्ग फलकी प्राप्ति होगी। इसके जल दर्शनसे डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, वेताल, राक्षस, ग्रह, कुष्माण्ड, खिटिङ्ग, कालकर्णी, बालग्रह, ज्वर, अपस्मार, विस्फोट प्रभृति, समुदय शान्त होंगे। जो मनुष्य इस तीर्थके जल द्वारा शिवलिङ्गको स्नान करावेंगे, सर्व्वतीर्थजल द्वारा स्नान करानेसे जो फल होता है, वह भी वही फल पावेंगे। ज्ञानरूपमें इस जगह द्रवमूर्त्ति धारणकर जड़ताका नाश और ज्ञानका उपदेश करूंगा। भगवान् प्रभु इस तरह वरदान दे वहीं अन्तर्हित हुए; त्रिशूलधारी, जटिल, ईशान भी अपनेको कृतार्थ जान वह परम जल पानकर परम ज्ञानलाभकर सुखी हुए। स्कन्दने कहा,—हे कुम्भयोने! पहले इस ज्ञानवापीमें एक विचित्र घटना हुई थी; उस विषयका इतिहास कहता हूं, सुनो। पूर्व्वकालमें इस काशीमें हरिस्वामी नामक एक ब्राह्मण थे। उनकी एक असामान्यरूपलावण्यवती कन्या थी। वह कन्या चतुःषष्टि कलामें, शील और सब लक्षणसे भूषित थी। उसके कण्ठस्वरसे कोकिल पराजित होता था। क्या नारी, क्या अमरी, क्या किन्नरी, क्या विद्याधरी, क्या नागकन्या, क्या गन्धर्व्वकन्या, क्या असुर कन्या, कोई भी उसके समान नहीं थी। उसका वेश देख मालूम होता था, मानो अस्पकारने

सूर्य्यके भयसे उसके मस्तकमें आश्रय लिया है। मुख देखनेसे मालूम होता, शशि अमावस्याके भयसे उसके मुखके शरणागत हुआ है और चण्डमरीचिके भयसे दिनमें भी त्याग नहीं करता। उसके भ्रूयुगलच्छलसे भ्रमरमाला मानो गण्डपत्रवतामें उत्पतनपतनगतिका अभ्यास करती हैं। उसके रमणीय नयनसे खञ्जनद्वय विचरण कर अपनी इच्छासे सदा शारदी प्रीति भोग करते थे। उसकी दन्तपंक्तिच्छलसे पञ्चबाणने मानो स्वर्णरेखासे अङ्कित कर रखा है, कि चन्द्रमें इतनी कला नहीं। विद्रुम कान्तिविजयी उसके सुचारु ओष्ठधर देखनेसे मनमें होता, मानो मदनराजके प्रासादका पताका फहरा रहा है। उसके कण्ठके तीनरेखाच्छलसे मानो कामदेव शपथ करके कहते हैं, कि यह रेखा नहीं स्वर्ग, मर्त्त्य और पाताल—यह तीनों भुवन रमणीके कण्ठमें हैं। उसके स्तनद्वय देखनेसे मनमें होता, मानो राजा मनसिजके अमूल्यरत्नभाण्डारपूर्ण दो पटमण्डप शोभा पाते हैं। विधाताने उसको अनङ्गदेवका आयतन ज्ञान करके ही मानो रोमावलीच्छलसे उसके मध्यदेशमें ऊर्द्ध्वयष्टि विधान किया था। उसकी नाभिगुहामें पतित होकर कन्दर्प अङ्गहीन हुआ, इसीसे वह वहाँ बैठकर फिर अङ्गलाभके लिये घोरतर तपस्या कर रहा है। उसके गुरु नितम्बने मन्मथमहामल्लदीक्षासे जगतमें किस युवकको दीक्षित नहीं किया था? उसके ऊरुस्तम्भसे किसका हृदय लुब्ध नहीं होता था। उसके सच्चरित्रसे कौन मुनिजनका कुचरित्र स्तम्भित नहीं होता था। उस मृगनयनाके चरणाङ्गुष्ठनखकी ज्योतिकी प्रभासे किसकी तत्त्वज्ञानजनित प्रभा विदूरित नहीं हुई थी? हे मुने! ऐसी रूपगुणसम्पन्ना वह कन्या प्रतिदिन ज्ञानवापीमें स्नानकर एकाग्रमनसे शिवमन्दिरमें सम्मार्ज्जन प्रभृति सब कर्म्म करती थी। उसकी पादप्रतिबिम्बका रेखारूप नवतृणाङ्कुर भक्षण करने पावें समझकर काशीस्थ युवकोंके चित्तहरिण उसे छोड़ बनमें नहीं जाते थे। युवकरूप मधुपश्रेणी उसका मुखपङ्कज त्यागकर, सुरभि कुसुमभमार भरित होनेपर भी लतान्तरकी सेवा नहीं करते थे। वह कन्या आकर्णान्तायतलोचना होनेपर भी किसी पुरुषका मुख नहीं देखती थी; सुन्दर कर्णयुगलधारिणी होनेपर भी किसीकी बात नहीं सुनती थी और उसके विरहसे कातररूप शौर्य्यसम्पन्न पुरुषगणके छिपे छिपे वहकी प्रार्थना करनेपर भी वह विवाहबन्धनकी अभिलाषिणी नहीं होती थी। उसके पिता युवकगणद्वारा अक्षु धनदानपूर्व्वक प्रार्थित होनेपर भी उन लोगोंके हाथ सम्प्रदान नहीं करने पाते थे। इसलिये कुमारी सुशीला ज्ञानोदतीर्थकी सेवा वश बाहर भीतर समस्त जगत्को ही लिङ्गमय

देखती थी। एक दिन किसी विद्याधर उसे रातके समय गृहाङ्गणमें निद्रित देख उसके रूपलावण्यसे मोहित हो उसे ले आकाशपथमें जाने लगा, उसी समय नरकपालभूषित, वसारुधिरलिप्त, सर्व्वाङ्ग श्मश्रुधारी, पिङ्गलनेत्र, भीमाकृति विद्युन्माली नामक एक राक्षस उपस्थित हो कहने लगा, अरे विद्याधरकुमार! बहुत दिनोंपर तुझे देख पाया है। आज तुझे इस नारी सहित यमसदनको भेजता हूं। राक्षसकी बातसे वह कन्या व्याघ्रभीत मृगी-की तरह अतित्रस्त हो कदलीपत्रकी भांति कांपने लगी। यह बात कहकर उस राक्षसने त्रिशूल द्वारा विद्याधरपर प्रहार किया। महाबलपराक्रान्त, मधुमूर्त्ति विद्याधरकुमारने भी उसके त्रिशूलाघातसे विदीर्णवक्षःस्थल हो, उसी समय मनुष्यवसा-मांससे मत्त उस विद्युन्माली राक्षसको वज्र-तुल्य मुष्टिप्रहारसे आघात किया। उस मुष्टिप्रहारसे चूर्णित शरीर हो राक्षस वज्राहत महीधरकी तरह भूतलमें गिर पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। विद्याधरने भी शूलाघातसे विकल हो घूर्णितनयन गद्गद-स्वरसे कहा—"प्रिये! सुधा लाया हूं; दान करो" यह अर्द्धोच्चारित बात उच्चारण करते करते प्रियाको स्मरणकर प्राण त्याग किया। उस कन्याने भी उसका स्पर्श-सुख अनुभवकर उसको ही पति समझ देहको अग्निसात् किया। एक ओर राक्षस त्रिश-त्रयशरीरिणी उस कन्याके सान्निध्य वश मरनेके उपरान्त दिव्य देह धारणकर स्वर्गवासी हुआ, दूसरी ओर विद्याधर-तनयने युद्धमें प्राणपणकर प्रियाको स्मरण करते हुए प्राणत्याग किया था इससे मल-यकेतुके औरसमें जन्म लिया और वह कुमारी भी विद्याधरपुत्रका ध्यान करते करते विरहानलमें देह अर्पणकर कर्णाट देशमें पुनर्जन्मभागिनी हुई। कालक्रमसे मलयकेतुके पुत्र उस मदनसुन्दर माल्यकेतुने उसी कन्या कलावतीसे विवाह किया। सहजसुन्दरी कलावती जन्मान्तरीण संस्का-रवशसे शिवलिङ्गकी अर्चनामें रत हुईं, चन्दनलेपन त्यागकर अङ्गमें विभूति धारण किया और मणिमाणिक्य, मुक्ता, पुष्परा-गकी अपेक्षा रुद्राक्ष-मालाको ही उत्तम नेपथ्य समझने लगीं। पतिव्रता कलाव-तीने दिव्य भोग सुखसे दिन बिता क्रमसे माल्यकेतुके औरससे तीन सन्तान लाभ किया। एक दिन उत्तरदेशीय किसी चित्र-करने आकर राजा माल्यकेतुको एक विचित्र चित्रपट दिखाया। राजाने वह चित्रपट ले कलावतीको समर्पण किया। कलावती उस रमणीय चित्रपटमें निर्ज्जनमें निज प्राण देवता विश्वनाथको बारंबार देखते देखते आनन्दभरे समाधिस्थ योगिनीकी तरह आत्म विस्मृत हुईं। फिर नयन खोलकर क्षणकाल चित्रपटपर नयनपातकर तर्ज्जनी उंगलीके प्रयोगसे आप ही आप कहने

लगीं;—यह लोलार्कके पास असिनदी-सङ्गम अङ्कित है, आदिकेशवके पदतलमें यह सरिद्वरा वरणानदी दिखाई देती हैं। स्वर्गके देवता भी जिनके स्पर्शके लिये लालायित हैं, वह स्वर्गतरङ्गिणी यह उत्तर ओर प्रवाहित हैं। सज्जनके मुक्तिदानके लिये जिसे वेदान्तशास्त्रमें अलच्य अव्यर्थ लक्ष्मी कहते हैं; जहां मरनेसे मङ्गल और जीवन सार्थक होता है; जिसके सामने स्वर्ग तृणतुल्य है, यति लोग जहां मृत्युकी कामनाकर अपनी विभवराशि वितरणाकर कन्दमूलाशी हो व्रत अवलम्बनसे अवस्थान करते हैं; जहां स्वयं शङ्कर गङ्गामार्गके मृत मनुष्योंको बुलाते और निज मौलिस्थ चन्द्रलोकका मुक्तिमार्ग दिखा दुस्तर संसारसागरसे उत्तीर्ण करते हैं; जहां कर्णधार पाकर नरगण मृत होकर भी अमृताय-मान होते हैं, जहां करुणानिलय स्वयं महेश्वरका कानमें जप होता है संसारपारका पन्थ अति सुलभ और बहुजन्मसञ्चित प्रभूत पुण्यबलसे मनुष्य अन्तकालमें भवतापहारी भवानीपतिसे कर्णजप पाता है; जहांके प्रभावसे विशालबुद्धि मनुष्य देहसंन्यास अवलम्बनकर यमको भी तृणज्ञान करते हैं, जहां राजर्षिवर हरिश्चन्द्रने निजपत्नीके साथ अपनी देहको तृणवत् दाम बेच डाला था। जहांकी सैकत-भूमि पानेके लिये वैकुण्ठवासी भी कोमल शय्याकी तरह वाञ्छा करते हैं; जहां जीवगण कोटि कोटि जन्मसञ्चित कर्म-सूत्र बन्धन उच्छेदनकर मुक्तिलाभ करते और सत्यलोकवासी भी मृत्युके लिये निरन्तर जिसकी प्रार्थना करते रहते हैं, वह मणिकर्णिका यह हैं। अन्यत्रकृत पाप काशीदर्शनसे नष्ट हो जाता है, किन्तु काशीमें पाप करनेसे दारुणयातना भोगना पड़ती है; वह यन्त्रणा जिस जगह श्री-कालभैरव देते हैं, वह यही फुलस्तम्भ है। जहां भैरवके हाथसे ब्रह्माका कपाल पतित हुआ था, यह वही पवित्र कपालमोचन तीर्थ है। जहां नरगण स्नानकर ऋण-त्रयसे मुक्त होते हैं, यह वही विशोधन ऋणमोचन तीर्थ है। यह भगवान् ओङ्का-रेश्वर विराजमान हैं।—इस जगह अकार, उकार, मकार, नाद और विन्दु यह पञ्चा-त्मक प्रणवाख्य परब्रह्म पञ्च आयतनकी पञ्च मूर्त्तिसे नित्य प्रकाश पाते हैं। वह स्नानमात्रसे मनुष्यकी जठरयातना-निवारिणी मत्स्योदरी तीर्थ है। देशान्तरस्थित निज भक्तके त्रिलोचनत्वविधाता यह भगवान् कृपालु त्रिलोचन हैं। यह कामेश्वर-देव हैं—सज्जनके अभीष्टदाता, दुर्वासा-मुनिके भी महोच्चकामनापूरयिता हैं, इनमें स्वयं महेश्वर भक्तजनोंकी कामनासिद्धिके लिये लीन हुए हैं, इसीसे इनका नाम स्वलीन हुआ। वाराणसीमें क्षेत्राभिमानी जो महादेव शास्त्रमें पठित हैं, यह विचित्र प्रासाद उन्हींका दिखाई देता है। अहा-

पूर्व्वक दर्शन करनेसे आजन्मब्रह्मचर्य्यके फलदाता यह स्कन्देश्वर देव हैं। यह सर्व्वसिद्धिदाता विनायकेश्वर देव हैं; इनको सेवा करनेसे विघ्नकारक विनायकगण दूर भागते हैं। यह साक्षात् मूर्त्तिमती वाराणसी देवी हैं, इनके दर्शनसे मनुष्यको फिर गर्भयातना भोगना नहीं पड़ती। यह पार्व्वतीश्वर लिङ्गका वृहत् मन्दिर है; इस जगह मोक्षदाता भगवान् देवदेव गौरी सहित नियत अवस्थान करते हैं। यह महापातकनाशन भगवान् भृङ्गीश्वर हैं; इन लिङ्गकी सेवासे भृङ्गी जीवन्मुक्त हुए थे। यह देखती हूं, भगवान् चतुर्व्वक्त्रधारी चतुर्व्वेदेश्वर हैं; इनके दर्शनसे ब्राह्मण वेदपाठका फल पाते हैं। जिनकी अर्चना करनेसे मनुष्यको सब यागफल लाभ होता है, यह वही यज्ञस्थापित यज्ञेश्वर लिङ्ग हैं। जिनके दर्शनसे अष्टादश विद्यासे मनुष्य अभिज्ञ होता है, यह वही अष्टादश अङ्गुलि परिमित पुराणेश्वर लिङ्ग हैं। यह स्मृतिप्रतिष्ठित भगवान् सर्व्वशास्त्रेश्वर हैं; इनके दर्शनसे स्मृतिपाठका फल मिलता है। यह सर्व्वजाड्यहारी सारस्वतलिङ्ग हैं। यह सद्योमुक्तिप्रद सर्व्वतीर्थेश्वर लिङ्ग हैं। इन शैलेश्वर लिङ्गका विविध रत्नखचित परमसुन्दर अति विचित्र मण्डप है। यह मनोहर सप्तसागर लिङ्ग हैं। इनके ही दर्शनसे मानव सप्तसमुद्रस्नानका फल पाते हैं। पूर्व्वयुगमें सप्तकोटि महामन्त्रसे स्थापित मन्त्रजाप्यके फलदाता यह श्रीमन्त्रेश्वर हैं। त्रिपुरेश्वर लिङ्गके सामने त्रिपुरारिका परम प्रिय यह त्रिपुरख्यात महत्कुण्ड विद्यमान है। बाण राजाके द्विभुज होनेपर भी उनके सहस्र बाहु होनेके निदानभूत और उनके पूज्य यह बाणेश्वर लिङ्ग हैं। यह प्रह्लादकेश्वरके पूर्व्वभागमें वैरोचनेश्वर हैं। यह बलिकेशव और यह आदि केशव हैं। इनके पूर्व्वभागमें यह आदित्य केशव हैं। यह भीष्मकेशव हैं, यह दत्तात्रयीश्वर हैं। उनके पूर्व्वभागमें यह आदिगदाधर हैं। यह भृङ्गकेशव हैं। यह वामनकेशव, नर, नारायण, यज्ञवाराहकेशव, विदारनरसिंह और गोपीगोविन्द देव हैं। प्रह्लाद जिनके प्रसादसे इन्द्रत्वपद प्राप्त हुए, उन लक्ष्मीनृसिंहका यह रत्नकेतन प्रासाद है। पुरुषोंके अथर्व्वसिद्धिदाता यह अथर्व्वनायक हैं। यह शिवस्थापित शेषमाधव हैं; इनके भक्तगण संवर्त्त वह्निमें भी दग्ध नहीं होते। शङ्खासुरके बध करनेवाले शङ्खमाधव इस जगह अवस्थित हैं। यह परम ब्रह्मरसायन सरस्वतीप्रवाह हैं; इस जगह गङ्गाके साथ इनका सङ्गम हुआ है, यहां स्नान करनेसे मनुष्य फिर भूतलमें उत्पन्न नहीं होते। यह श्रीविन्दुमाधव हैं, यह साक्षात् लक्ष्मीपति हैं; श्रद्धापूर्व्वक इनको प्रणाम करनेसे गर्भवास नहीं होता,

दारिद्र्य और व्याधिपीड़ न नहीं होता, यम भी इनके भक्तको नमस्कार करते और यही नादविन्दु स्वरूप और अमूर्त्त परब्रह्म हैं। पञ्चब्रह्म पञ्चसंज्ञक यह पञ्चनद तीर्थ है; इसमें स्नान करनेसे पञ्चभूतमय देह धारण नहीं करना पड़ती। जिनके प्रसादसे काशीमें नर इहकालमें और परकालमें परम मङ्गल लाभ करते हैं, यह वही मङ्गलागौरी हैं। मयूखमण्डित, तमोहारी यह मयूखादित्य हैं। यह दिव्यतेजोदाता गभस्तीश नामक महालिङ्ग हैं। इस जगत् मार्कण्डेय मुनिने निज नामसे आयुःप्रद लिङ्गकी प्रतिष्ठाकर महातपस्या की थी। यह त्रिलोकीविश्रुत किरणेश्वर लिङ्ग हैं; इन्हें प्रणाम करनेसे सूर्य्यलोकप्राप्ति होती है। यह पातकधावन धौतपापेश्वर लिङ्ग हैं। यह भक्त निर्व्वाणकारी निर्व्वाण नरसिंह हैं। यह महार्मणिभूषण मणिप्रदीप नाग है; इनकी अर्चना करनेसे नागका भय नहीं रहता। यह कपिलमुनि स्थापित कपिलेश महालिङ्ग हैं; इनके दर्शनसे मानवकी बात तो दूर रही, कपि पर्य्यन्त मुक्त हो जाते हैं। यह प्रियव्रतेश्वर लिङ्ग दिखाई देते हैं; इनकी अर्चनासे लोग सर्व्वप्रिय होते हैं। यह कलि और कालभयनिवारक श्रीकालराजका मणि-माणिक्य रचित श्रेष्ठ आयतन है; भगवान् कालराज निजभक्तगणका पाप भक्षणकर रक्षा करते और तीर्थविघ्नकारी पापात्माओंको शत शत यातना दे विद्रावित करते हैं। यह रमणीय मन्दाकिनी प्रवहमाणा हैं, यह काशीमें तपस्या करनेके लिये आई थीं, किन्तु काशीवासके सुखसे मुग्ध हो, अब स्वर्ग जानेमें विरत हैं; इनमें यथाविधि स्नान और पितृतर्पण करनेसे, पापकारीको भी नरकका दर्शन करना नहीं पड़ता। काशीस्थ सब लिङ्गोंके रत्न यह रत्नेश्वर लिङ्ग हैं, इनके प्रसादसे बहुरत्न भोगकर निर्व्वाण महारत्नको कौन नहीं पा सकता? यह कृतिवासेश्वरका बृहत् प्रासाद है; इन्हें दूरसे देखनेपर भी मनुष्य कृतिवासका पद लाभ करते हैं। यह कृतिवासेश्वर ही सब लिङ्गोंके मौलिस्थानीय, ओङ्कारेश शिखा, त्रिलोचन ही लोचन, गोकर्णेश्वर और भारतेश्वर ही कर्ण विश्वेश्वर और अविमुक्तेश्वर उभय दक्षिण करद्वय, कर्णेश्वर और मणिकेश्वर ही वामकरद्वय, कालेश्वर और कपर्द्दीश्वर ही सुन्दर चरणयुगल, ज्येष्ठेश्वर नितम्ब, मध्यमेश्वर नाभि, महादेव ही जटाजूट, श्रुतीश्वर शिरोभूषण, चन्द्रेश्वर हृदय, वीरेश्वर आत्मा, केदारेश्वर लिङ्ग शुक्रेश्वरको महात्मा लोग शुक्र कहते हैं। अपरापर कोटि परिमित जितने शिवलिङ्ग हैं, वह देहके नख, लोम और भूषण गिने जाते हैं। जो इनमेंसे दोनों दहिने हाथ हैं, वह उभय मोहसमुद्रमें पतित, जीवगणके अभयदाता

और नित्य मुक्तिविधाता हैं। यह भगवती दुर्गा और यह पितृलिङ्ग हैं। यह चित्रघण्टेश्वरी और यह घण्टाकरण रुद्र हैं, यह ललितागौरी हैं, यह अद्भुत विशालाची हैं, यह आशाविनायक हैं, यह पितृगणके पिण्डदानमें परम ब्रह्मदाता विचित्र धर्मरूप है। यह विश्वजननी विश्वभुजा देवी और नियत त्रिलोकीपूजिता पापमोचनी बन्दीदेवी हैं। यह त्रिलोकपूज्य दशाश्वमेध तीर्थ है; इस जगह बारत्रय आहुतिमात्रसे अग्निहोत्रका फल मिलता है। सकल तीर्थोत्तम यह प्रयाग स्रोतः, प्रयोकतीर्थ, गङ्गाकेशव, यह श्रेष्ठ मोक्षद्वार है और इसीको स्वर्गद्वार कहते हैं।

त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त॥ ३३॥

चतुस्त्रिंश अध्याय।

ज्ञानवापी-प्रशंसा।

स्कन्दने कहा,—हे कुम्भयोने। इस तरह कुमाराङ्गी कलावती एक एक चित्रपटमें सब देखकर स्वर्गद्वारके अभ्युत्थभाग मणिकर्णिकाको फिर देखने लगीं। इस जगह स्वयं शङ्कर संसार भुजग-दष्ट जीवगणके दाहने कानको दाहने हाथसे पकड़कर तत्त्वज्ञान उपदेश देते हैं। जो गति कपिलयोग या सांख्ययोग अथवा व्रतकलापसे भी अगम्य है, उसीको यह भूमि अवलीलासे देती हैं। यह विष्णुभवन वैकुण्ठधाम है विष्णुभक्तगण मुक्तिके लिये सदा ही मणिकर्णिकाका ध्यान किया करते हैं। द्विजगण यावज्जीवन, अग्निहोत्र अथवा यथाविधि ब्रह्मयज्ञ अनुष्ठान करके भी चरमको मुक्ति पानेके लिये श्रीमणिकर्णिकाके शरणागत होते हैं। क्षत्रियपुङ्गव भूरि दक्षिणा दानसे भूयो यागयज्ञकर अन्तमें मुक्तिके लिये श्रीमणिकर्णिका होके पदतलमें लोटते हैं। नियत पातिव्रत्य-धर्मपालिनी रमणी भी पतिकी अनुगामिनी हो अन्तकालमें मोक्षकी आशासे मणिकर्णिकाका आश्रय लेती हैं। न्यायोपार्जित धन वैश्यगण भी सत्पात्रको दानकर अन्तमें मुक्तिकी आशासे श्रीमणिकर्णिकाकी शरण लेते हैं, न्यायमार्गगामी सत्शूद्रगण भी स्त्रीपुत्रादि त्यागकर निर्वाण लाभके लिये श्रीमणिकर्णिकाका आश्रय लेनेको लालायित होते हैं। जितेन्द्रिय आजीवन ब्रह्मचारिगण भी मुक्तिके लिये मणिकर्णिकाका आश्रय लेते हैं। पञ्चयज्ञरत गृहस्थाश्रमी अतिथिगणको सन्तुष्ट करके भी अन्तमें श्रीमणिकर्णिकाकी सेवा चाहते हैं। संयतेन्द्रिय वानप्रस्थाश्रमिगण मुक्तिके उपायसे ज्ञात होकर परिणाममें श्रीमणिकर्णिकाको भजते हैं। मुमुक्षु, एक दण्डिमतावलम्बी नानाशास्त्रसे मणिकर्णिकाको ही एकमात्र मुक्तिका साधन जान इसके सेवा-परायण होते हैं। त्रिदण्डिगण काय, मन और वाक्यको दण्डित

करके भी मुक्तिके अभिलाषसे मणिकर्णि-काकी शरण लेते हैं। प्रव्राजकगण चञ्चल चित्त संयतकर निःश्रेयसक्ष्मीलाभके लिये मणिकर्णिकाका आश्रय लेते हैं। एक-दण्डव्रतधारी मुक्तिके लिये मणिकर्णिकाको भजते हैं। मुक्तिलाभेच्छु, शिखा जटा या कौपीनधारी,—मुण्डितमुण्ड या नग्न कौन मनुष्य मुक्तिदायिनी मणिकर्णिकाकी सेवा नहीं करते? जिन लोगोंकी तपश्चरण या दानमें शक्ति नहीं है और योगाभ्यास नहीं है, उन्हें मणिकर्णिका मुक्ति देती है। हे मुने! मुक्तिके सहस्र द्वारा होने-पर भी मणिकर्णिका अवलीलाक्रमसे जैसी मुक्ति देती है, वैसी और कोई भी नहीं है; क्या अनशनव्रतावलम्बी और क्या त्रिसन्ध्याभोजी दोनोको ही मणिकर्णि-का अन्तमें निर्विशेष मुक्ति देते हैं। कोई यथाविधि पाशुपतव्रतका अवलम्बन करे और कोई हृदयसे मणिकर्णिकाका स्मरण करे, इन दोनोकी मरनेपर समान गति होती है; अतएव झटपट सब त्यागकर मणिकर्णिकाकी ही सेवा करेंगे। जो मणिकर्णिकामें अवगाहनकर स्वर्गद्वारमें जाते हैं, उनका पाप धौत होता है और स्वर्ग भी दूर नहीं रहता। स्वर्गद्वार स्वर्गभूमि और मणिकर्णिका मोक्षभूमि है, अतएव इस पृथ्वीमें ही स्वर्ग और अपवर्ग वर्त्तमान हैं;—ऊपर या नीचे नहीं। जो मणिकर्णिकामें स्नानकर बहुत कुछ दान करते हुए स्वर्गद्वारमें प्रवेश करते हैं, वह नरकमें नहीं जाते। कविगणने स्वर्गशब्दका अर्थ सुख और अपवर्गशब्दका अर्थ महा-सुख निरूपण किया है। मणिकर्णिकामें उपविष्ट जनको जितना सुख लाभ होता है, सिंहासनाधिरूढ़ देवराजको भी उतना सुख नहीं मिलता। समाधि अवस्थामें लोगोंको जितना सुख मिलता है, श्रीमणिकर्णिकामें वह सहज ही प्राप्त होता है। स्वर्गद्वारके पूर्व्व और देवनदीके पश्चिम सौभाग्य और भाग्यका एकमात्र आश्रय अनिर्व्वच-नीय महाक्षेत्र मणिकर्णिका अवस्थित है। सूर्य्यकरस्पर्शसे जितने परिमित बालुका कण उद्भासित होता है, उतने परिमित ब्रह्मालयको प्राप्त हुए, किन्तु यह मणि-कर्णिका ज्योंकी त्यों है। मणिकर्णिकाकी चारो ओर इतने असंख्य तीर्थ हैं, जिनसे तिलमात्र भूमि शून्य नहीं है। जिनके वंशसम्भूत किसी मनुष्यने मणिकर्णिकामें देह त्यागकर मुक्तिलाभ की है, उनके वंशके उत्पन्न सन्तानगण यदि देवगणका तर्पण करें, तो उनके प्रभावसे ऊर्द्धतन और अधस्तन सप्तपुरुष उद्धार होते हैं। गङ्गाका मध्यस्थान, हरिश्चन्द्रमण्डप, गङ्गाकेशव और स्वर्गद्वार यह चतुःसीमावच्छिन्न स्थान ही मणिकर्णिका है; त्रिभुवन इस मणिकर्णि-काके धूलीकणके बराबर भी नहीं है। इसके प्राप्त करनेके लिये ही त्रिलोकके सब लोग यत्न करते हैं। इसतरह काला-

वतीने बारबार चित्रपटको देखकर श्री-विश्वेश्वरके दक्षिण भागमें ज्ञानवापीको देखा। दण्डनायक, सम्भ्रम और विभ्रम गणाद्वय गुरुतर भ्रान्ति उत्पादनकर दुर्व्वृत्तसे सदा इसके जलकी रक्षा करते हैं। पुण्यशास्त्रमें महादेवकी जो अष्टमूर्त्ति कही गई है, उन्हींमें यह ज्ञानवापी उनकी जलमयी मूर्त्ति है। कलावती ज्ञानवापीको देख, क्षणकाल रोमाञ्चिततनु हुईं। उनका अङ्ग कांपने लगा, कपालसे स्वेद निर्गत हुआ और नयन आनन्दाश्रुसे पूर्ण हुए। कार्त्तिकने कहा, उनका शरीर स्तम्भित हुआ, मुख म्लान हुआ, कण्ठवाष्पावरुद्ध हुआ; चित्रपट हाथसे भूतलमें भ्रष्ट हुआ। उस समय वह क्षणकालके लिये आत्मविस्मृत हुईं। वह जान न सकीं, कि "मैं कौन और कहां हूं।" केवल सुषुप्तिदशासे परमात्माकी तरह निश्चलभाव हुईं। फिर उनकी परिचारिकागण त्वरान्वित हो इतस्ततः यह क्या हुआ! यह क्या हुआ! कहकर आपसमें पूछतांछ करने लगीं। चतुरा दासीगण उनकी यह अवस्था देख, सात्त्विकभावको समझ परस्पर कहने लगीं, "इन्होंने जन्मान्तरके किसी प्रणयी मनुष्यको देखा है, इसीलिये उसके मिलनसुखसे मूर्च्छाप्राप्त हुई हैं; नहीं तो यह सहसा अति सुन्दर चित्रपट निर्जनमें देखकर मूर्च्छित क्यों होंगी।" वह सब इसी तरह उनकी मूर्च्छाका कारण स्थिरकर स्निग्ध उपाचार द्वारा स्थिरभावसे परिचर्य्या करने लगीं। उनमें कोई कदलीपत्रके पङ्खे द्वारा हवा देने लगीं, किसीने हाथमें मृणालवलय पहना दिया, किसीने सुस्निग्ध चन्दन लेपन किया, किसीने अशोकपत्र द्वारा उनका शोक दूर किया। किसीने प्रियविरहसे सन्तप्त उनकी देहलताको धारायन्त्रोत्थित जलकणा द्वारा सिक्त किया, किसीने भीगे वस्त्रसे उनकी देह आवृत की, औरोंने उनके अङ्गमें कर्पूरचूर्ण लेपन कर दिया। किसीने उनके लिये पद्मपत्रकी कोमल शय्या रचना की, किसीने उनके अङ्गसे हीरकमय भूषण उतार स्तनमण्डलमें मुक्ताहारकी रचना कर दी। किसीने चन्द्रानना शीतलस्रावी चन्द्रकान्तशिलातलमें उन कृशाङ्गीको शयन करा दिया। सखियोंको इस तरह परिचर्य्या करते देख बुद्धिशरीरिणी नामक एक सखीने अति सन्तप्त हो कहा, मैं इनकी सन्तापहर महोषध जानती हूं, तुम लोग यह सब उपचार शीघ्र दूर हटाओ। मैं इन्हें अभी सन्तापहीन करती हूं, कौतुक देखो। यह चित्रपट देखकर विह्वल हुई थीं, अतएव इस चित्रपटमें इनकी कोई प्रणयभूमि निश्चय ही है; इसके स्पर्शसे यह सन्ताप त्याग करेंगी। तब बुद्धिशरीरिणीकी यह बात सुनकर उनकी परिचारिकाओंने उनके सामने चित्रपट रखकर कहा, सखि कलावती! अपने

नयनानन्दकारी इष्टदेवताका चित्र देखो। कलावती भी इष्टदेवताका नाम सुन चित्रपटके स्पर्शकी अमृतधारासे सिक्त होकर यदि मानो चैतन्य लाभकर उठ बैठीं। अवग्रहविशोषित ओषधि वृष्टिधारासिक्त होनेसे जैसी प्रफुल्ल होती है, उसी तरह प्रफुल्ल होकर कलावती फिर ज्ञानदायिनी ज्ञानवापीको देखने लगीं, तब चित्रार्पित उस ज्ञानवापीको देख पूर्वजन्मका समस्त वृत्तान्त उनके स्मृतिपथपर चढ़ा और मन ही मन ज्ञानवापीकी अद्भुत महिमा फिरसे विचारकर कलावतीने कहा, "ज्ञानवापीकी भी कैसी आश्चर्यकी महिमा है! उसके इस चित्रदर्शनसे भी मुझे जन्मान्तरका समुदय वृत्तान्त स्मरण हुआ।" यह कहकर कलावतीसुन्दरी, ज्ञानवापीके प्रभावसे अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सखियोंसे कहने लगीं। कलावतीने कहा, "मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मणकी कन्या थी। मेरे पिताका नाम हरिस्वामी, माताका नाम प्रियम्वदा और मेरा नाम सुशीला था। मुझे एक विद्याधर हरणकर ले गये। राहमें निशीथकालमें मलयाचलके समीप एक राक्षसने उनका विनाश किया, उन्होंने भी उसका वध किया। तब राक्षसने शापमुक्त हो दिव्यदेह धारण की। उन्हीं विद्याधरने अब मलयकेतुके औरससे जन्म ग्रहण किया है, मैं भी कलावती नामसे कर्नाट राजाकी कन्या हुई हूं। ज्ञानवापी दर्शनसे क्षणमें ही मुझे ऐसा ज्ञान हुआ।" वह वर्त्तिधारिणी और अपरापर परिचारिकागण उनकी यह बात सुनकर आनन्दित हुईं और अन्यान्य पुण्यशीला कलावतीको प्रणामकर बोलीं, अहो ज्ञानवापीकी कैसी अद्भुत महिमा है! सब वह कैसे लाभ की जा सकती हैं? जिन्होंने ज्ञानवापीको नहीं देखा, इस मर्त्यलोकमें उनके जन्मको धिक् है। हे कलावती! आपके चरणको नमस्कार है, आप हमारी कामना पूर्ण करिये। महाराजसे कह हमलोगोंका वहां ले जाकर जन्म सार्थक करिये। अहो कलावती! हमलोग आज प्रतिज्ञा करती हैं, कि ज्ञानवापीका दर्शनकर महा सुखभोग करेंगी और अवश्य करेंगी। जिसके चित्रदर्शनसे आपको ऐसा ज्ञान समुद्भूत हुआ, उसका नाम "ज्ञानवापी" होना अवश्य ही उचित है, कलावतीने "तथास्तु" कह, अङ्गीकारको छिपा, एक दिन प्रियकार्य्य समाप्त होनेपर यथोचित समयमें राजासे कहा, हे जीवितनाथ! आपके सिवा मेरे लिये दूसरी प्रियवस्तु कहीं नहीं है, आपको पतिलाभ कर मेरी सब कामना पूर्ण हुई है। हे आर्य्यपुत्र! एकमात्र मनोरथ अपूर्ण है, विचारकर देखनेसे वह आपको भी हितकर बोध होगा। अधीनतासे मेरा वह मनोरथ अति दुर्लभ है; किन्तु आप स्वाधीन हैं।

आपके लिये उसे अभिप्राय ही कहना चाहिये। हे जीवितेश्वर! अधिक और क्या कहूँ, यदि मेरे जीवनसे प्रयोजन हो, तो मेरा वह मनोरथ पूरण करिये ; नहीं तो मैं जीवन गत होऊंगी। राजा, प्राणापेक्षा प्रियतमा उन कलावतीकी बात सुन उनकी ओर अपनी हितकर बात कहने लगे। राजाने कहा, अहो भाविनि प्रिये! इस जगत्में तुम्हारे अदेय कुछ भी नहीं है ; तुमने कला और शील-गुणसे मेरा जीवन पर्य्यन्त खरीद लिया है। अहो कलावती! कहनेमें विलम्ब न करो, यह सम्पन्न हुआ है ; ऐसा ही समझो। तुम जैसी पति-व्रताओंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अहो प्रिये कलावती! किसके निकट और क्या प्रार्थना करना होगी, प्रार्थयिता ही कौन है? तुम्हारा या मेरा आचरण औरोंकी तरह नहीं है। हे भाविनि! देश, धनराशि, दुर्ग, वन जो कुछ है, वह सब तुम्हारा ही है, मेरा नहीं, मैं नाम-मात्रका अधीश्वर हूँ। हे जीवितेश्वरि! तुम्हें छोड़ और सबके ऊपर मेरा वही प्रभुत्व है। मैं तुम्हारे कहनेसे राज्यको विषवत् त्याग कर सकता हूँ। राजा माल्यकेतुकी बात सुनकर कलावतीने गम्भीरभावसे कहा, हे नाथ पहले विधाताने नाना प्रकारकी प्रजा सृजनकर उनकी कल्याणके निमित्त धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चार पुरुषार्थ सृजन किये। पुरुषार्थहीन होनेसे जन्म पानीके बुलबुलेकी तरह विफल होता है; इसलिये इसलोक और परलोकके सुखके लिये अन्ततः एक साधने करना उचित है। पुराणज्ञ पण्डितोंने जो कहा है, वह बात यथार्थ दिखाई देती है, कि जहां दम्पतियुगलमें परस्पर सद्भाव रहता, वहां त्रिवर्गकी वृद्धि होती है। आपके भवनमें मेरी जैसी शत दासी विद्यमान हैं सही, किन्तु मेरे प्रति ही आपका अत्यन्त प्रेम दिखाई देता है। आपकी दासी होना ही सौभाग्यकी बात है, अङ्क-शायिनी होनेकी, तो बात ही नहीं है। उसपर पुत्रलाभ और स्वाधीनपति ; सुतरां कौन रमणी मेरे समान सौभाग्यशालिनी है? बुद्धिमान् पुरुष इष्टापूर्त्त कर्म्मके लिये अर्थ, तपश्चरणके लिये निर्व्विघ्न आयु और अपत्यलोभके लिये दारपरिग्रह करते हैं। हे प्रिय! विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे आपको यह सब वर्त्तमान हैं। हे नाथ! यदि मेरा अभिलाष एकान्त पूरणीय समझें, तो कहती हूँ, सुनिये,—अवि-लम्ब मुझे काशीधाममें भेजिये, मेरा प्राण पहले ही वहां जा चुका है—इस जगह केवल शरीरमात्र है। माल्यकेतु कला-वतीकी स्पष्ट बात सुन क्षणकाल मन ही मन विचारकर बोले,—प्रिये कलावती! यदि तुम्हारा एकान्त ही मन्तव्य हुआ है, तो तुम्हारे विहीन यह चञ्चल राज्यलक्ष्मीका

मुझे प्रयोजन ही क्या है? यह सप्ताङ्गि राज्य राज्यपदवाच्य नहीं है, प्रियतमा ही राजलक्ष्मी है; अतएव. तुम्हारे बिना मुझे यह तृणवत् तुच्छ है। प्रिये! मैं निष्कण्टक राज्य करता हूं, निरन्तर विविध भोगसे मेरी सब भोगेन्द्रिय सफल हुई हैं, सन्तोष चरितार्थ हुआ है और पुत्र उत्पन्न हुआ है; मुझे इस जगत्से और काम ही क्या है? अवश्य ही हम दोनो वाराणसी चलेंगे। इस तरह माल्यकेतुने प्रियतमाको आश्वासनकर कृतसङ्कल्प हो दैवज्ञगणको बुला शुभदिन दिखाया। फिर अमात्यादिसे विदा ले राजका भार पुत्रके हाथमें दे उनसे कुछ अर्थ और रत्नादि लेकर काशीकी ओर यात्रा की। राजा माल्यकेतुने विश्वेश्वरनगरीके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ समझा। रानी कलावती भी पूर्व्वजन्मसंस्कारवश निकटस्थग्रामीय व्यक्तिकी तरह नगरीके पथ समुदायसे अवगत हुईं। वहां वह दोनो मणिकर्णिका स्नान, प्रचुर अर्थदान विविध रत्नसमूहसे विश्वनाथकी पूजा और रत्न, गज, अश्व, धेनु, विचित्र दुकूल, विविध पूजाका उपकरण, स्वर्णरौप्यमय कलस, दीप, दर्पण, चामर, ध्वजदण्ड, पताका और विचित्र चन्द्रातप दानकर प्रदक्षिणाके बाद मुक्तिमण्डपमें गये। वहां धर्म्मकथा सुन धन वितरणकर सायंकालीन महापूजाके समाप्त होनेपर नृत्यगीतवाद्यादि महोत्सवमें रात्रिजागरणकर प्रातःकाल उठ शौचादि क्रिया समाधाकर रानी कलावतीके निर्दिष्ट पथसे, राजा ज्ञानवापीमें गये। नृपतिने कलावतीके साथ प्रफुल्लचित्तसे स्नानकर पितृतर्पण और पिण्डदानके बाद सत्पात्रको रौप्यसुवर्णादि वितरणपूर्व्वक दीन, अन्ध, कृपण और अनाथोंको भोजन करा पारण किया, कलावतीने ज्ञानवापीको सोपानराजि रत्नसे बंधा दिया। वह कभी एकान्तरोवास, कभी तीन दिन, छः दिन, सप्ताह, पक्ष और एक मासतक उपवास प्रभृति कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतानुष्ठानकर पतिशुश्रुषामें जीवनका अवशिष्ट भाग क्षणकालकी तरह यापन करने लगीं; एक दिन वह दोनो ज्ञानवापीमें स्नानकर उपविष्ट हुए, ऐसे ही समय एक जटाजूटधारीने आकर उन्हें विभूति प्रदानकर प्रसन्नमुखसे आशीर्व्वाद दे कहा, तुमलोग उठो, भूषित हो, तुम लोगोंको क्षणकालमें तारकोदय (मुक्ति) लाभ होगा। यह बात जैसे ही उन्होंने उन लोगोंसे कही, उसी समय लोगोंके सामने किङ्किणिनिनादितकर विमान उपस्थित हुआ। भगवान् चन्द्रमौलिने उस विमानसे उतर उनके कर्णमूलमें स्वयं किसी मन्त्रसे उपदेश दिया। तत्क्षणात् अनाख्येय एक परम ज्योतिः आविर्भूत हुई। भगवान्ने भी आकाशपथ उद्दीपितकर अपने स्थानको प्रस्थान किया। स्कन्दने कहा,—हे मुने! तबसे इस जगत्में ज्ञान-

वापी प्रत्यक्ष ज्ञान दान करती है। इसलिये सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ हुई। यह ज्ञानवापी सर्व्वज्ञानमयी सर्व्वलिङ्गमयी और साक्षात् शिवमूर्त्ति है। सद्यः शुद्धिकर अनेक तीर्थ इस पृथिवीमें हैं, किन्तु वह इसकी सोलह कलाकी एक कलाके बराबर भी नहीं हैं। जो मनुष्य ज्ञानवापीकी उत्पत्तिकथा अवहित मनसे सुनेंगे, उनका मृत्युकालमें भी ज्ञानभ्रंश नहीं होगा। महादेव और गौरीका प्रीतिवर्द्धक, पवित्र, रमणीय महापापनाशक इस ज्ञानवापीका महत् उपाख्यान श्रद्धापूर्व्वक पठन, पाठन या श्रवण करनेसे मनुष्य शिवलोकमें जाते हैं।

चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंश अध्याय।

सदाचार।

अगस्त्यने कहा, महाक्षेत्र अविमुक्तक्षेत्र परमनिर्व्वाणकारक, क्षेत्रसमूहमें परमक्षेत्र और मङ्गलराशिका भी मङ्गलस्वरूप है। सब श्मशानोंमें अविमुक्तक्षेत्र ही परम महत् श्मशान है; सब ऊषरक्षेत्रोंमें परम-ऊषर है। हे मयूरवाहन! अविमुक्तक्षेत्र, धर्म्माभिलाषि बुद्धिसम्पन्न व्यक्तियोंमें परमधर्म्मराशिसम्पादक और अर्थप्रार्थियोंका परमार्थप्रकाशक है। यह कामियोंको कामसम्पादक और मुमुक्षु व्यक्तियोंको मुक्तिप्रद है। आपकी बातोंमें जहां तहां सुना है, कि 'काशीमें परम मुक्ति है।' हे गौरीहृदयानन्दकर कार्त्तिकेय! अविमुक्तक्षेत्रकी एकदेशवर्त्तिनी ज्ञानवापीकी परम कथा सुन मैंने स्थिर किया है, कि काशीमें अणुप्रमाण भूमि भी सिद्धिमुक्ति-प्रदायिनी और महीयसी है; काशीमें व्यर्थभूभाग कहीं नहीं है। इस अखिल महीतलमें, कहां तीर्थ नहीं हैं? परन्तु वह समस्त काशीकी धूलिकण तुल्य भी नहीं हैं। सागरकी आनन्दविधायनी नदी कहां नहीं हैं? किन्तु उनमेंसे गङ्गाके समान कौन हो सकती हैं? हे षडानन! भूतलमें कहां नहीं मुक्तिक्षेत्र हैं; किन्तु वह सब अविमुक्तक्षेत्रके कोटिभागके एकभाग समान भी नहीं हैं। जहां गङ्गा, विश्वेश्वर, और काशी, यह तीन मूर्त्ति जाग्रत हैं, वहां मुक्ति-लक्ष्मी प्राप्त होंगी, इसमें आश्चर्य ही क्या है? हे स्कन्द! मानव—विशेषतः कलियुगके, नितान्त चञ्चलेन्द्रिय मनुष्य इस मूर्त्तित्रयकी किस तरह नियत प्राप्त हो सकते हैं; कलियुगमें वैसी तपस्या कहां है? वैसा योगानुष्ठान कहां है? वैसा व्रत अथवा दान ही कहां है? तब कलियुगमें मोक्ष कैसे मिलेगा? हे षडानन! बिना तपस्या, बिना योग, बिना व्रत और बिना दानके काशीमें मुक्ति होती है, यह आपने कहा। हे स्कन्द! कैसे कैसे आचार करनेसे काशी प्राप्ति होती है, सो कहिये। मैं विवेचना करता हूं,

सदाचार व्यतीत, मनोरथसिद्धि नहीं होती। आचार परमधर्म, आचार परम तपस्या, आचारसे आयुर्वृद्धि होती है, आचारसे पापक्षय होता है। अतएव हे षडानन! पहले आचार प्रसङ्ग ही कहिये, देवादिदेवने आपसे जो कहा है, उसीके अनुसार कहिये। स्कन्दने कहा, हे मित्रावरुणनन्दन! जिस नित्य आचरणसे सर्व्वाभीष्ट प्राप्त होता है, सज्जनगणका हितकारी वह सदाचार मैं कहता हूं। स्थावर क्रमि, जलचर, जीव, पक्षी, पशु और मनुष्य—यह यथाक्रमसे (पहले पहलेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर अधिक) धार्म्मिक हैं। देवगण, उनकी अपेक्षा भी धार्म्मिक हैं। प्रथमकथित स्थावरकी अपेक्षा द्वितीयकथित क्रमि क्रमसे सहस्रांशके एकांश हैं, इसी तरह क्रमसे पहलेकी अपेक्षा उत्तरकथित जीव सहस्रांशके एकांश हैं, तथापि सभी महाभाग हैं;—अपेक्षाकृत अल्प होनेपर भी सबका श्रेणीविभाग सुविस्तृत है;—मुक्ति पर्य्यन्त तुल्यरूपमें सबका आश्रय संसार है। हे मुने! स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज इन चतुर्व्विध प्राणियोंमें चेष्टासम्पन्न प्राणिगण ही अति उत्तम हैं, उनकी अपेक्षा ज्ञानपूर्व्वक चेष्टाशाली जीव श्रेष्ठ हैं। उन जीवोंमें मनुष्य प्रधान हैं और मनुष्यसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें विद्वद्गण प्रधान और विद्वद्गणमें, शास्त्रोपदिष्ट व्यापारमें कृतनिश्चय व्यक्तिगण प्रधान हैं। कृतनिश्चय व्यक्तिकी अपेक्षा अनुष्ठाता ही श्रेष्ठ हैं। कर्म्मानुष्ठातृगणकी अपेक्षा ब्रह्मतत्पर व्यक्तिगण प्रधान हैं। हे कुम्भयोने! त्रिलोकमें उनके अर्च्चनीय और कोई नहीं है। तपोविद्याविशेषमें वही परस्परके पूजक हैं। इसीलिये ब्रह्माने ब्राह्मणकी सृष्टि की और इसीसे जगत्को सब वस्तुओंके पाने योग्य ब्राह्मण हैं; और कोई नहीं। किन्तु सदाचार ब्राह्मण ही सर्व्वाधिकारी हैं, आचारच्युत व्यक्ति नहीं। अतएव ब्राह्मण सतत आचरणसम्पन्न होंगे। हे मुने! रागद्वेषरहित हो ज्ञानी विद्वान विप्रके, धर्म्ममूल सदाचारका अनुष्ठान करते हैं। सुलक्षणविवर्ज्जित मनुष्य भी असूया परित्यागकर श्रद्धापूर्व्वक आचारपरायण होनेपर शतवर्ष जीवन लाभ करते हैं। मनुष्य आलस्यवर्ज्जित हो अपने अपने कर्म्मसे धर्म्ममूल श्रुतिस्मृति कथित सदाचार सेवन करेंगे। दुराचार पुरुष निन्दनीय, सदाव्याधिग्रस्त, अल्पायु और दुःखभागी होते हैं। पराधीन कर्म्म परित्याज्य, सदा आत्मवश कर्म्म ही करेंगे। क्योंकि पराधीनता ही दुःखमूल और स्वाधीनता ही सुखहेतु है। शास्त्रमें जिस स्थलमें दो विरुद्ध कर्म्म कर्त्तव्य कहे गये हैं, वहां जो काम करनेसे अन्तात्मा प्रसन्न हों, वही कर्त्तव्य है, इसके सिवा और काम कर्त्तव्य नहीं है। —ने कहा

गया है, कि यम नियम ही धर्म्मका सर्व्वस्व है, अतएव धर्म्माभिलाषीको यमनियमानुष्ठान ही कर्त्तव्य है। सत्य, क्षमा, सारल्य, ध्यान, अनृशंसता, अहिंसा, वाह्येन्द्रियसंयम, प्रसन्नता, मधुरता और कोमलता यह दशविध यम हैं। शौच, स्नान, तपस्या, दान, मौन, याग, अध्ययन, व्रत, उपवास और इन्द्रियसंयम, यह दशविध नियम हैं। काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य्य और लोभ, इन छः रिपुओंका विजयी सर्व्वत्र विजयी होता है। परपीड़नपराङ्मुख हो वल्मीकस्तूपकी तरह धर्म्मसञ्चय कर्त्तव्य है। धर्म्म ही परलोकका सहाय है। पिता, माता, पुत्र, भ्राता, पत्नी, बन्धु, लोकजन, हस्ती, अश्वादि उपकरण, परलोकके सहाय नहीं हैं; परलोकका धर्म्म ही सहाय है। प्राणी अकेले जन्म लेते और अकेले ही मरते हैं, अकेले ही पापपुण्य भोगते हैं पञ्चत्वप्राप्त देहको काष्ठलोष्ट्रादिकी तरह भूतलमें परित्यागकर बन्धुगण लौट जाते हैं, धर्म्म ही केवल उस गमनपरायण प्राणीका अनुगमन करता है। अतएव ज्ञानी व्यक्ति, परलोकसहाय धर्म्मका सञ्चय करेंगे। धर्म्मके सहाय पानेसे, दुस्तर तमः दूर हो सकता है। सुधी व्यक्ति, अधम व्यक्तियोंको परित्यागकर उत्तम उत्तम व्यक्तियोंसे सम्बन्ध करेंगे और इस तरह वंशका उत्तमत्व साधन करेंगे? उत्तमोत्तम सम्बन्धकर और अधमाधम व्यक्तियोंका सम्बन्ध वर्ज्जनकर ब्राह्मण श्रेष्ठत्व प्राप्त करेंगे, इसके वैपरीत्याचरणसे शूद्रत्वको लाभ होते हैं। अध्ययनहीन, सदाचारत्यागी, अलस और अभक्ष्यभोजी ब्राह्मणको मृत्यु, अपने वश करती है। इन सब कारणोंसे ब्राह्मण यत्नसहित सदा सदाचार करेंगे। तीर्थगण भी सदाचारपरायण व्यक्तिगणके समागमका अभिलाष रखते हैं। रजनीका शेष यामार्द्ध (चार दण्ड) ब्राह्म समय है। प्राज्ञ व्यक्ति सदा उस ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ अपनी हितचिन्ता करेंगे। निद्रा परित्यागकर पहले ही गणेशका स्मरण, फिर अम्बिकासहित महादेवका स्मरण, फिर क्रमसे लक्ष्मीसहित नारायण और ब्रह्माणीसहित ब्रह्माका स्मरण कर्त्तव्य है। फिर इन्द्रादि देवता, वशिष्ठादि मुनि, गङ्गा प्रभृति नदी, श्रीपर्व्वत प्रभृति पर्व्वत, क्षीरोदादि समुद्र, मानसादि सरोवर, नन्दनादि वन, कामधेनु प्रभृति धेनु, कल्पद्रुम प्रभृति वृक्ष, सुवर्ण प्रभृति धातु, उर्व्वशीप्रमुख दिव्य रमणी, गरुड़ादि पक्षी, अनन्तादि नाग, ऐरावत प्रमुख हस्ती, उच्चैःश्रवा प्रभृति अश्व, कौस्तुभादि मङ्गलकर मणि, अरुन्धतीप्रमुख पतिव्रता रमणी, नैमिषादि अरण्य और काशीपुरी प्रभृति पुरीका स्मरण करेंगे। फिर विश्वेश्वर प्रमुख लिङ्ग। ऋक् प्रभृति वेदचतुष्टय, गायत्री प्रभृति मन्त्र, सनकादि योगीगण, प्रणवादि महाबीज, नारद प्रभृति वैष्णव,

बाण प्रभृति शिवभक्तगण, प्रह्लाद प्रभृति दृढ़व्रत भक्तगण, दधीचि प्रभृति वदान्य मुनिगण और हरिश्चन्द्र प्रमुख भूपतिसमूहका स्मरणपूर्व्वक सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तम जननीके चरणयुगलका ध्यानकर प्रसन्नचित्तसे पिता और गुरुजनकी मन ही मन चिन्ता करेंगी। फिर मलत्याग करनेके लिये गांवसे शत धनु दूर और नगरसे उससे भी चारगुणा दूर नैर्ऋतदिक्को गमन करेंगी। वहां तृण द्वारा भूमि अच्छादन और वस्त्र द्वारा मस्तक आवृतकर, दक्षिण कानमें यज्ञोपवीत स्थापन और मौनावलम्बनकर दिनमें उत्तर-मुख और रातमें दक्षिणमुख हो, मलमूत्र त्याग करेंगी। दण्डायमान हो मलमूत्र त्यागना कर्त्तव्य नहीं। विप्र, गौ, अग्नि और अनिलके अभिमुखीन हो और जलमें, फालकृष्ट भूमिमें रथ्या में और सेव्य-भूमिमें मलमूत्र त्याग न करेंगी, उस समय किसी तरफ न देखें ज्योतिश्चक्र और नि-र्म्मल गगन भी न देखें। फिर बांयें हाथसे शिश्न धारणकर वहांसे सावधान हो उठेंगी। मूषिक (चूहे) और नकु-लकी (न्योलेकी) उखाड़ी हुई मट्टी और शौचोच्छिष्ट मट्टीके सिवा कीट और कर्कट रहित मिट्टी लेकर मृत्तिका लिङ्गमें एक बार, पायुमें पांच बार, बांयें हाथमें दश बार, दोनो हाथमें सात बार, दोनो पैरमें एक एक बार और फिर दोनो हाथोंमें तीन बार लेपनकर, जलमें प्रक्षालित करेंगी। जो गृही मलगन्ध और मृत्तिका लेपक्षय नहीं होते, वह इस तरह शौच-क्रिया करेंगी। ब्रह्मचारि प्रभृति तीन आश्रमी यथाक्रमसे इसकी अपेक्षा दो दो गुण अधिक शौच करेंगी अर्थात् ब्रह्मचारी गृहीसे द्विगुण; वाणप्रस्थाश्रमी, ब्रह्म-चारीसे द्विगुण और संन्यासी वाणप्रस्था-श्रमीसे द्विगुण करेंगी। दिनके लिये इस तरह शौच निर्द्दिष्ट है। रातमें इसका आधा करेंगी, पीड़ितावस्थामें आधा करेंगी, चौरभयादिभीषण पथमें उससे भी आधा शौच विहित है। पुरुषविहित शौचक्रियासे स्त्रियोंको अर्द्धेक शौच विहित है। सुस्थ अवस्थामें इसे न्यून न करेंगी। भावदुष्ट व्यक्ति, निखिल नदीजल, मृत्तिका-राशि और गोमयसमूह द्वारा आपाद मस्तक शौच करनेपर भी शुद्ध नहीं हो सकते। शौचक्रियामें सरस आमलकी फल परिमाण मृत्तिका ग्रहण करना चाहिये। यवितीय आहुतिका और चान्द्रायणव्रतमें ग्रासका परिमाण भी यही है। फिर तुष, अङ्गार, अस्थि और भस्मवर्ज्जित शुद्ध भूमिभागमें, पूर्व्वमुख अथवा उत्तरमुख हो उत्तमरूपसे उपवेशन कर ब्राह्मण, ब्राह्म-तीर्थद्वारा अनुष्ण, अफेन हृदय पर्य्यन्त गामी, दृष्टिपूत जल द्वारा त्वराशून्य हो आचमन करेंगी। क्षत्रियगण कण्ठगामी और वैश्यगण तालुगामी जल द्वारा आचमन-कर शुद्ध होते हैं। स्त्री, शूद्र मुखसे जल-

स्पर्श करके ही शुद्धि पाते हैं। मस्तक या कण्ठ आवृतकर जलमें शुष्क वस्त्र पहन या मुक्तशिख हो अथवा पादप्रक्षालन न करके जो व्यक्ति आचमन करते हैं, उन्हें शुद्धि नहीं मिलती। तीनबार जलपानकर वक्ष्यमान प्रकारसे इन्द्रियछिद्र विशोधित करेंगे। दक्षिण हाथके अङ्गुष्ठमूल द्वारा दो बार ओष्ठाधर स्पर्श करेंगे; फिर तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका, इन तीन उंगली द्वारा फिर मुखस्पर्श करेंगे। तर्ज्जनी और अङ्गुष्ठके अग्रभाग द्वारा दोनो नासिका रन्ध्र स्पर्श करेंगे। फिर अङ्गुष्ठ और अनामिका, अग्रभाग द्वारा दोनो आंख और कानको स्पर्श करेंगे। फिर कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ द्वारा नाभि रन्ध्र स्पर्श करेंगे। फिर हस्ततल द्वारा हृदय स्पर्श करेंगे, समस्त उंगली द्वारा मस्तक स्पर्श करेंगे और फिर उंगलियोंके अग्रभाग द्वारा दक्षिणस्कन्ध और वामस्कन्ध स्पर्श करेंगे। सब जगह स्पर्श करनेके समय हाथ सजल रहना चाहिये। रथोपतर्पण, स्नान, भोजन या जलपानकर और शुभकर्म्मके प्रारम्भमें एकबार आचमनकर फिर आचमन करेंगे। निद्रासे उठकर वस्त्र परिधानकर, किसी अमाङ्गलिक वस्तुको देख और प्रमादवश अशुचि द्रव्य स्पर्शकर, दोबार आचमन करनेसे पवित्र हुआ जाता है। इसतरह आचमनके बाद मुखशोधनके लिये दन्तधावन करना चाहिये। बिना दन्तधावन किये आचमन करके भी शुद्ध नहीं हुआ जाता। प्रतिपद, अमावस्या, षष्ठी और नवमी तिथिमें या रविवारको दन्तमें दन्तधावनकाष्ठ संयोग करनेसे सप्तम पुरुषपर्य्यन्त दग्ध होते हैं। इस निषिद्ध दिन या दन्तकाष्ठके अलाभसे मुखपरिशुद्धिके लिये द्वादश गण्डूष जलसे मुहं धोना विहित है। कनिष्ठा उंगलीके अग्रभागकी तरह स्थूल, त्वक्युक्त, निर्व्रण, सरल और द्वादशाङ्गुल परिमित दन्तकाष्ठ ग्रहण करेंगे। ब्राह्मणके सिवा और सब वर्ण पूर्व्वापेक्षा यथाक्रमसे एक एक उङ्गली कम परिमाण ग्रहण करेंगे। आम्र, आम्रातक आमलकी, कक्कोल, खदिर शमी, अपामार्ग खर्ज्जूरी, शेलु, श्रीपर्णी, पीलू, राजादन; नारङ्ग, कषाय, कटुवृक्ष, कण्टकवृक्ष और क्षीरवृक्षसे दन्तकाष्ठ लेंगे और काष्ठद्वारा कृति उत्तम जिह्वोल्लेखनिका निर्म्माणकर लेंगे, उससे जिह्वा शोधन करेंगे। अन्न भोजनके निमित्त निर्म्मलता लाभकर स्थिरपंक्तिसे दृढ़ हो; कारण राजा चन्द्र, वनस्पतिमें प्रतिगत हो, मेरा मुख मार्ज्जन करते हुए भाग्य द्वारा उसे विशोधित करेंगे। "हे वनस्पति! तुम हमलोगोंको आयु बल, यश, तेजः, पशु, वसु, ब्रह्मप्रज्ञा और मेधा प्रदान करो।" इस अर्थका हो मन्त्र पढ़कर जो व्यक्ति प्रत्यह दन्तधावन करते हैं, वनस्पतिस्थित सोम उनपर प्रसन्न होते हैं। मुख,

पर्य्युषित रहनेपर मनुष्य अपवित्र रहते हैं, अतएव विशुद्ध होनेके लिये प्रयत्न सहित प्रत्यह दन्तधावन करेंगे। उपवासमें भी मुखप्रक्षालन, अञ्जन, गन्ध, अलङ्कार, सद्वस्त्र, माल्य और अनुलेपनका दोष नहीं है। इसतरह दन्तधावनकर, पवित्र तीर्थमें प्रातःस्नान और प्रातःसन्ध्या करेंगे। अहोरात्र नवछिद्र द्वारा मलस्रावी मलसम्पन्न शरीर प्रातःस्नानसे शुद्ध होता है। प्रातःस्नान, मनुष्योंकी उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप सम्पद और मनःप्रसन्नताका हेतु है; इसलिये ही महात्मालोग प्रातःस्नानकी प्रशंसा करते हैं। मनुष्य निद्राके वशवर्त्ती हो स्वेद, लाला प्रभृति क्लेद द्वारा परिपूर्ण होते हैं; प्रातःस्नान करनेसे मन्त्र स्तोत्र और जपादिपर उसका अधिकार होता है। अरुणोदयकालमें स्नान, प्राजापत्य व्रतके समान है और इस स्नानसे महापाप विनष्ट होता है। प्रातःस्नानसे मनुष्योंका पाप, अलक्ष्मी, ग्लानि, अपवित्रता और दुःखस्वप्नदोष विनाश होता है। प्रातःस्नान तुष्टि-पुष्टिप्रद है। प्रातःस्नायी व्यक्तियोंपर दोषसमूह कभी आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं हैं। प्रातःस्नानसे दृष्ट और अदृष्ट विविध फलप्राप्ति होती है। अतएव मनुष्य अवश्य प्रातःस्नान करेंगे। हे कुम्भयोने! मैं प्रसङ्गक्रमसे स्नान विधि कहता हूं; कारण, पण्डितोंने कहा है, कि विधिपूर्व्वक स्नान, साधारण स्नानकी अपेक्षा शतगुण श्रेष्ठ है। विशुद्ध मृत्तिका, कुश, तिल और गोमय ग्रहणकर पवित्र स्थानमें अवस्थानकर स्नान करना होगा। पहले कुश ग्रहण और शिखा बांध जलमें "उरुंहि" इत्यादि मन्त्र उच्चारणकर जल आवर्त्तित करेंगे। फिर "धि ते शतं" इत्यादि मन्त्र द्वारा जलको आमन्त्रणकर "सुमित्रिया नः" इत्यादि मन्त्र उच्चारण करते हुए पहले जलाञ्जलि प्रदान करते हुए "दुर्म्मित्रिया" इत्यादि मन्त्र शत्रुके उद्देशसे पढ़ेंगे। फिर "इदं विष्णु" इत्यादि मन्त्र उच्चारणपूर्व्वक मृत्तिका लेपन करेंगे। एकबार मृत्तिका द्वारा मस्तक क्षालितकर, दोबार मृत्तिका द्वारा नाभिका उपरिभाग, तीनबार मृत्तिका द्वारा नाभिका अधोभाग और छः बार मृत्तिका द्वारा दोनो पैर विशोधित करेंगे। फिर "आपो अस्मान" इत्यादि मन्त्र पाठपूर्व्वक प्रवाहाभिमुख हो डुबकी लगावेंगे। फिर "उदिदाभ्यः शुचिः" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उन्मज्जनकर "मा नस्तोक" इत्यादि मन्त्र पढ़कर, सर्व्वाङ्गमें गोमय लेपन करेंगे। फिर "इमं मे वरुण" इत्यादि, "तत्त्वायामि" इत्यादि, "त्वन्नः" इत्यादि, "सत्वन्नः" इत्यादि, "उदुत्तमम्" "धाम्नो धाम्नः" इत्यादि, "मापो मौषधीः" इत्यादि, "यदाङ्गरन्ध्रा" इत्यादि, "मुञ्चन्तु मा" इत्यादि, "अवभृथ" "अद्देवत" (जिनके देवता जल हैं) मन्त्रस-

मूह द्वारा आत्माभिषिक्तकर ब्राह्मण, प्रणव, इसके उपरान्त महाव्याहृति, फिर गायत्री द्वारा आत्मपावन करेंगी। "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रत्रय भी आत्मविशोधक हैं, अतएव फिर उनके द्वारा अभिषिक्त करेंगी। "इदमापः" इत्यादि, "हविष्मतीः" इत्यादि, "देवीरापः" इत्यादि, "अपोदेवाः" इत्यादि, "द्रुपदादिव" इत्यादि, "शन्नोदेवी," इत्यादि, "अपोदेवी" इत्यादि, "अपां रसम्" इत्यादि और "पुनन्तु मा" इत्यादि, यह सो पावमानीसूक्तको भी आत्मशोधक कहते हैं। इन सब मन्त्र द्वारा आत्मशोधनकर जलमें मग्न हो अघमर्षण मन्त्र जप अथवा "द्रुपादिव" मन्त्रका जप करेंगी, अथवा विधिपूर्व्वक प्राणायामका जप करेंगी, या तीन बार प्रणव जप करेंगी, विष्णु स्मरण करेंगी। इस तरह स्नानकर वस्त्र निष्पीड़नकर धौत वस्त्र या उत्तरीय परिधान करेंगी। फिर कुशग्रहण या आचमनकर प्रातःसन्ध्या करेंगी। जो द्विज, विशेषतः जो ब्राह्मण, सन्ध्याकी उपासना नहीं करते, वह जीवितावस्थामें शूद्रवत और मरनेके बाद अवश्य ही कुक्कुर होते हैं। सन्ध्याहीन व्यक्ति सर्व्वदा अपवित्र और सब कामोंके अयोग्य रहते हैं और वह सकृत किसी क्रियाका फलभागी नहीं होता। पहले पूर्व्वमुख हो प्रणव स्मरणपूर्व्वक कुशासन बिछाकर "वतुस्नत्तिः" इत्यादि मन्त्र पढ़कर बद्धशिख, अनन्यचेताः अनन्यदृष्टि हो दक्षिण और जलधार द्वारा आत्मअभ्युक्षणकर, प्राणायाम करेंगी। "आपो ज्योतिः" इत्यादि शिरोमन्त्र, सप्तव्याहृति और दश प्रणवके सहित तीनबार गायत्रीका जप करेंगी, (पूरक, कुम्भक और रेचक करेंगी) यही प्राणायाम है। ब्राह्मणके संयतचित्त या संयतेन्द्रिय हो प्राणायाम करनेपर, तत्क्षणात् अहोरात्रकृत पापसे मुक्ति होती है। जो व्यक्ति, मनःसंयमकर दश या द्वादश बार प्राणायाम करते हैं, उन्हें महत् तपस्याका फल मिलता है। एक मासतक प्रति दिन षोड़श बार प्राणायाम करनेसे भ्रुणहत्या पापसे भी मुक्ति मिलती है। जैसे अग्निकी संयोगसे पार्थिवधातुका मल दग्ध होता है, उसी तरह प्राणायाम द्वारा इन्द्रियकृत दोष समूह दग्ध होता है। एक ब्राह्मणको विधिपूर्व्वक भोजन करानेसे, जो फल होता है, श्रद्धासहित दश मात्र प्राणायाम करनेसे वही फल [illegible] है। वेदादि निखिल वाक्यस्वरूप ही प्रणवमें प्रतिष्ठित हैं; अतएव वेदजपपरायण व्यक्ति सदा उस देवादिप्रणवका अभ्यास करेंगी। जो मनुष्य सदा प्रणवाभ्यास करते हैं, सप्तव्याहृति और त्रिपदा गायत्रीसे उन्हें कभी भय नहीं रहता। हे कुम्भयोने! प्रणव परम ब्रह्म, प्राणायाम परम तपस्या और गायत्रीकी अपेक्षा विशुद्धिकर मन्त्र दूसरा नहीं है। निशाकालमें कर्म्म, वाक्य और मन द्वारा

जो पाप किया जाता है, प्रातः उठकर सन्ध्या और प्राणायाम करनेसे वह पाप विनष्ट होता है। दिनमें कर्म्म, वाक्य और मनसे जो पाप किया जाता है, सायंसन्ध्यासे उपविष्ट हो प्राणायाम करनेसे वह पाप विनष्ट होता है। उठकर गायत्रीका जप करते हुए सूर्य्यदर्शन पर्य्यन्त प्रातःसन्ध्या करेंगे और उपविष्ट हो गायत्रीका जप करते हुए सम्यकरूपसे नक्षत्रदर्शन पर्य्यन्त सायंसन्ध्या करेंगे। उठकर प्रातःसन्ध्याका जप करनेसे रात्रिकृत पाप नष्ट होता और उपविष्ट हो सायंसन्ध्याका जप करनेसे दिनकृत पाप नष्ट होता है। जो प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या नहीं करते, वह शूद्रवत् हैं, द्विजगणके सब कामोंसे वहिष्कर्त्तव्य हैं। जलके समीप उपस्थित हो, नित्यकर्म्मका अनुष्ठान करेंगे और अरण्यमें जाकर समाहित-चित्तसे गायत्रीका जप करेंगे। कारण, गृहके बाहर सन्ध्योपासनासे गृहमें उपासनाकी अपेक्षा अनेक गुण हैं। जो मनुष्य जितेन्द्रिय हो मात्र गायत्रीका जप करेंगे, वह अच्छे हैं, किन्तु त्रिवेदी होकर जो मनुष्य, सकल द्रव्य भोजन और सब वस्तुओंको बेचते हैं, वह मान्य नहीं। जिनके देवता सूर्य्य, अग्नि मुख, विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप छन्दः है, वह त्रिपदा गायत्री सर्व्वापेक्षा श्रेष्ठ हैं। प्रातःकालमें "लोहितवर्णा, ब्रह्मदेवता, हंसारूढ़ा, अष्टवर्षा, रक्तमाल्यानुलेपना, ऋग्वेदस्वरूपा, अभयदा, अक्षमालाविभूषिता, महर्षि व्यास कर्त्तृक स्तूयमाना और अनुष्टुप् छन्दोयुता" गायत्रीका ध्यान करेंगे। प्रातःकाल इसतरह गायत्रीका ध्यान करनेसे रात्रिकृत पाप नष्ट होता है। फिर "सूर्य्यश्च" इत्यादि मन्त्र द्वारा आचमन करेंगे और "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रत्रय द्वारा मार्ज्जन करेंगे। मार्ज्जनकालमें भूमिसे, मस्तकसे, आकाशमें; आकाशसे, भूमिसे, मस्तकमें; मस्तकसे आकाशसे भूमिमें, इस तरह नौ बार जलक्षेप करेंगे। इस जगह मार्ज्जनज्ञ व्यक्तिगण, भूमि शब्दमें चरण, आकाश शब्दमें हृदय और मस्तक शब्दमें जिस अर्थका व्यवहार है, उसे निर्द्देश किया करते हैं। वारुणस्नानसे आग्नेयस्नान श्रेष्ठ, आग्नेयस्नानसे वायव्य-स्नान श्रेष्ठ, वायव्य-स्नानसे इन्द्र-स्नान श्रेष्ठ, इन्द्र-स्नानसे मन्त्र-स्नान श्रेष्ठ और मन्त्र-स्नानसे ब्राह्म-स्नान श्रेष्ठ है। ब्राह्म-स्नानसे मनुष्यका वाह्य और अन्तर शुद्ध होता है और वह देवपूजा प्रभृति सब कर्म्मके अधिकारी होते हैं। धीवर दिनरात जलमें स्नान करके भी क्या पवित्र होता है? उसी तरह भावदुष्ट व्यक्ति शत बार स्नान करनेपर भी शुद्ध नहीं होते। शुद्धान्तःकरण व्यक्तिवर्ग ही विभूतिलेपनसे पवित्र हो सकते हैं; नहीं तो भस्मधूसरित होनेपर भी रासभगणको कौन पवित्र कहता है? इस जगत्में निर्म्मलचेताः व्यक्ति

ही सब तीर्थोंके स्नात सर्व्वविध मल-वर्ज्जित और शतयज्ञके फलोपभोगी हैं। हे मुने! जिस तरह चित्त निर्म्मल होता है, वह सुनो। विश्वनाथ यदि प्रसन्न हों, तो चित्त निर्म्मल हो सकता है और किसी तरहसे नहीं। अतएव चित्तविशुद्धिके लिये काशीनाथके शरणापन्न होंगे। उनके आश्रयसे आन्तरिक मल सकल नियत विनष्ट होता है विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे नष्ट-मल मानव यह देह त्यागकर मोक्षलाभ कर सकते हैं। एकमात्र सदाचार ही मनुष्यको उन विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे लाभका कारण है; अतएव मनुष्य श्रुति और स्मृतिसम्मत उक्त सदाचार समूहका अनुष्ठान करेंगे। फिर "द्रुपदादि" मन्त्रका जपकर विधिज्ञ व्यक्ति, हाथमें जल लेकर "ऋतञ्च" इत्यादि मन्त्र द्वारा अघमर्षण करेंगे। जो जलमें निमग्न खड़े हो तीन बार अघमर्षणका जप करेंगे, अश्वमेधके अन्तमें अवभृथ-स्नानसे जो फल मिलता है, वह व्यक्ति भी वही फल लाभ करेंगे। जो व्यक्ति जल अथवा स्थलमें अघमर्षणका जप करते हैं, सूर्य्योदय होनेपर जैसे अन्धकारराशि विलय प्राप्त होती है, उसी तरह उनके पापसमूह भी विनष्ट हो जाते हैं। "अन्तश्चरसि" इत्यादि मन्त्रको पढ़कर आचमन करनेके लिये कोई आचार्य्य उपदेश करते हैं, दूसरे शाखाभेदसे आचमनकी व्यवस्था किया करते हैं। फिर शिरोमन्त्रहीन सप्रणव महाव्याहृति उच्चारणकर गायत्री पाठकर तीन बार जलाञ्जलि प्रदान करेंगे। वह जलाञ्जलि वज्रोदक नामसे अभिहित है; सूर्य्यशत्रु मन्देह नामक राक्षसगण, वज्राहत शैलकी तरह उससे विनष्ट होते हैं। द्विजगणमें जो व्यक्ति सूर्य्यसाहाय्यार्थ मन्देह नामक राक्षसोंके नाशके लिये जलाञ्जलित्रय नहीं देते, उन्हें मन्देहत्वप्राप्ति होती है। जबतक सूर्य्य दिखाई न दें, प्रातःकाल दण्डायमान हो, तबतक गायत्रीका जप करेंगे और जबतक नक्षत्र न दिखाई दें, तबतक उपविष्ट हो सायंकालमें गायत्रीका जप करेंगे। निजहिताकांक्षी द्विज कभी सन्ध्याकालातिक्रम न करेंगे; सुतरां सूर्य्यके अर्द्धोदय और अर्द्धास्त समयमें वज्रोदक प्रदान करेंगे। सन्ध्या समय अतीतकर, विधिपूर्व्वक सन्ध्या करनेसे भी वह विफल होती है, गर्भफलहीन वन्ध्यास्त्री-मैथुन इसका दृष्टान्त है। द्विजगणके बांये हाथमें जल लेकर सन्ध्या करनेसे उस सन्ध्याका नाम "वृषली" है; उससे राक्षसगण ही प्रसन्न होते हैं। सूर्य्योपस्थानमें, "उद्वयन्त" इत्यादि, "उदुत्य" इत्यादि, "चित्रंदेवानां" इत्यादि और सर्व्वशेषमें "तच्चक्षुः" इत्यादि सूर्य्योपस्थान मन्त्रगण, सिद्धिप्रद है, सूर्य्योपस्थानसे, सहस्रबार, शतबार, वा दशबार गायत्री जप करेंगे। उसमें सहस्रबारका जपना ही श्रेष्ठ है, शतबार जप

मध्यम और दशवार जप अधम है। जो ब्राह्मण एतदन्यतम गायत्रीका जप करते हैं, वह पापमें लिप्त नहीं होते। फिर "विभ्राड्" इत्यादि अनुवाक या पुरुषसूक्त, अथवा शिव-सङ्कल्प, अथवा ब्राह्मणमण्डल जप करेंगे। यह सब उपस्थानमन्त्र सूर्य्य-प्रीतिकर हैं। फिर वेदोक्त या आगमोक्त मन्त्र उच्चारण करते हुए रक्तचन्दन मिश्रित जल, अक्षत, पुष्प और कुश द्वारा सूर्य्यको अर्घ्य प्रदान करेंगे। जो व्यक्ति सूर्य्यकी पूजा करते हैं, वह त्रैलोक्यके पूजक हैं। सूर्य्यदेव पूजित हो, पूजकोंको पुत्र, पशु, धन और आयुः प्रदान करते, उनके रोग-समूह शान्ति करते और सब कामना पूर्ण करते हैं। यह सूर्य्यदेव ही रुद्र हैं, यही विष्णु और यही हिरण्यगर्भ हैं, यह दिवाकर त्रयीरूप हैं। सूर्य्यके सन्तोषसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन्द्रादि देवगण, मरीचि-प्रभृति महर्षिगण, मन्वादि मानवगण और सोमपादि पितामहगण, सन्तुष्ट होते हैं। इसतरह सूर्य्यकी, पूजाकर तर्पणमें प्रवृत्त होंगे। द्विजगण, दक्षिण हाथ द्वारा नौ सात या पांच, साग्र समूल अच्छिन्न और गर्भशून्य दर्भ परिग्रहकर, अन्वारब्ध अर्थात् वामहस्तधृत दक्षिण-हस्त द्वारा षड्विनायक, ब्रह्मादि निखिल देवगण और मरीच्यादि मुनिगणको उद्देशकर "तृप्यन्तु" पद उच्चारण करते हुए चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सुगन्धि कुसुमयुक्त पवित्र जल द्वारा तर्पण करेंगे। फिर निवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीत कण्ठमें लम्बितकर दोनो हाथोंके दोनो अंगठेमें सरल दर्भसमूह धारणकर सनकादि मनुष्य-गणके उद्देशसे सयव जल द्वारा तर्पण करेंगे। फिर प्राचीनावीती (दक्षिणस्कन्ध-लम्बित यज्ञोपवीती) हो द्विगुण दर्भ ले सतिल जल द्वारा कव्यवाह अनलप्रमुख दिव्यपितृगणके उद्देशसे तर्पण करेंगे। मङ्गलाभिलाषी ब्राह्मण रविवार, शुक्रवार, त्रयोदशी, सप्तमी निशाकाल या सन्ध्याद्वय-यमें कभी तिल तर्पण न करें; यदि करें, तो सफेद तिलद्वारा करें। फिर चतुर्दश यमका नाम उच्चारणकर तर्पण करेंगे। फिर वाग्यत हो, वामजानु पतितकर, अपना गोत्र उच्चारण करते हुए पितृतीर्थ द्वारा पितृगणका तर्पण करेंगे। देवगण-तर्पणमें प्रत्येकको एक एक अञ्जलि, सनकादि ऋषिगणको दो दो अञ्जलि, पितृगणको तीन तीन अञ्जलि स्त्रियोंको एक एक अञ्जलि जल दें। उङ्गलीके अगले भागमें देवतीर्थ, उङ्गलीके मूलमें ऋषितीर्थ, अङ्गुष्ठके मूलमें ब्राह्मतीर्थ, करतलमें प्रजापतितीर्थ और अङ्गुष्ठ या तर्जनीमें पितृतीर्थ निर्द्दिष्ट है। "उदीरतां" इत्यादि, "अङ्गिरस" इत्यादि, "आयान्तु नः" इत्यादि, "ऊर्ज्जं वहन्ति" इत्यादि, "पितृभ्यः स्वधायिभ्यः" इत्यादि, "ये चेह" इत्यादि, "मधुवाता" इत्यादि

तीन, और यह नौ मन्त्र "नमोः नवपितर" इत्यादि पढ़कर पितृतर्पण करेंगी। फिर "आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं देवर्षि" इत्यादि मन्त्र पढ़ती पढ़ती तर्पणकर "ये चास्माकं" इत्यादि मन्त्र द्वारा वस्त्रनिष्पीड़नोदक भूमिमें निक्षेप करेंगी। तर्पणके उपरान्त अग्निकार्य्य (होम) कर, वेदाभ्यास करेंगी। वह वेदाभ्यास पांच तरहके हैं, वेदग्रहण, (१), वेदार्थविचार (२), अभ्यास (३), जप (४), शिष्योंको शिक्षा-प्रदान (५), फिर लब्ध अर्थका प्रतिपालन और अलब्ध अर्थप्राप्तिके लिये दाताके पास जायेंगी और निज गौरवकी वृद्धि करेंगी। हे द्विजवर! द्विजगणका प्रातः-कृत्य कहा। प्रातःस्नानमें जो अशक्त हैं, वह प्रातःकाल उठ आवश्यक कर्म्म समापनकर शौचाचमन ले दन्तधावनके बाद सर्व्वाङ्ग शोधन करते हुए प्रातःसन्ध्या करेंगी। फिर वेदार्थ और विविध शास्त्र अनुशीलनकर, मेधावी, शुचि या हित-कारी शिष्यसमूहको अध्ययन करायेंगी। फिर अलब्धकी प्राप्ति या लब्ध परिपाल-नादिके लिये राजसमीप गमन करेंगी। फर विचक्षण व्यक्ति, मध्याह्नकर्म्मकी सिद्धिके लिये मध्याह्नकालमें पूर्व्वोक्त विधि अनुसार स्नानकर, मध्याह्नसन्ध्या करेंगी। मध्याह्नसन्ध्याके बाद यों गायत्रीका ध्यान करेंगी,—"गायत्री नवयौवनविकसिताङ्गी, शुद्ध स्फटिकवत् निर्म्मलकान्तिमती, त्रिष्टुप् छन्दःसमायुक्ता, रुद्रदेवता, काश्यपर्षिसमन्विता, यजुर्व्वेदस्वरूपिणी, प्रणवात्मिका या वृषभपोरि समारूढ़ा; भक्तगणको अभयमुद्रा उनके हाथमें प्रकाशमान है।" फिर देवपूजाकर, नित्यविधिका अनुष्ठान करेंगी। पाकाग्नि प्रज्वलितकर वैश्वदेव करेंगी। शिम्बी, कोद्रव, माष, कलाय, चणक, तैलपक्व, लवणयुक्त सब तरहके सिद्धान्न, तुवरी, मसूर, स्थूलकलाप वरटी और भुक्तावशिष्ट या सर्व्व पर्य्युषित द्रव्य वैश्वदेवके परित्याज्य हैं। पहले कुशहस्तसे आचमनकर प्राणायाम करेंगी। "पृष्ठोदिवि" इत्यादि मन्त्र द्वारा पर्य्युक्षण करेंगी। फिर प्रदक्षिण या पर्य्युक्षण करते हुए कुश विस्तीर्णकर, "एषोहदेव" इत्यादि मन्त्र द्वारा अग्निको सुसम्मुख करेंगी। फिर आज्यपुष्प या अक्षत द्वारा वैश्वानरको पूजाकर, प्रणवादिके स्वाहान्तमें "भूरादि" मन्त्रसे तीन आहुति प्रदान करेंगी। ब्राह्मण भूः प्रभृति तीनो मन्त्र एकत्र उच्चारणकर, फिर एक आहुति प्रदान करेंगी। फिर "देवकृतस्य" इत्यादि मन्त्र द्वारा छः आहुति प्रदान करेंगी। इसके उपरान्त मौनी हो एक आहुति यमको प्रदान करेंगी। फिर दो बार स्विष्टिकृत होम करेंगे और विश्वदेवगणको आहुति देंगी। फिर भूमिके उत्तरभागमें भूतगणके उद्देशसे बलिप्रदान देंगी। फिर प्राचीनावीती हो, उसके दक्षिणभागमें

पितृगणोद्देश्यसे बलिप्रदान करेंगे। फिर यक्षोंको ईशानकोणमें निर्णेजनोदकान्न प्रदान करेंगे, उसके उत्तर ब्रह्मादि देवगणको नमोन्तमन्त्र द्वारा बलिप्रदान देंगे। फिर निवीती हो सनकादिको और प्राचीनावीती हो पितृगणको बलिप्रदान देंगे। षोड़श ग्रासमें एक हन्त, चार ग्रासमें पुष्काल, ग्रासमात्र भिक्षा गृहस्थगणको सुकृतप्रदा होती है। पथिक, क्षीणवृत्ति गुरुपोषक, विद्यार्थी, यति और ब्रह्मचारी यह छः मनुष्य धर्म्मभिक्षुक हैं, पथिक ही यथार्थ अतिथि और श्रुतिपारगामी व्यक्ति ही अनुचान हैं। ब्रह्मलोकाभिलाषी गृहस्थोंके यह दो ही मान्य हैं। चाण्डाल और कुक्कुरको भी अन्न प्रदान करनेसे अन्न व्यर्थ नहीं होता। किसीके अन्नार्थी हो आगमन करनेपर पात्रापात्रकी विवेचना न करेंगे। पतित, चाण्डाल, पाप रोगग्रस्त व्यक्ति, कुक्कुर, काक और कृमिगणके लिये बाहर अन्न निक्षेप करेंगे। ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, सौम्य, या नैऋतमें, जो सब काक हैं, भूमिका भीतप्रदत्त यह अन्न ग्रहण करें। वैवस्वत कुलमें समुत्पन्न, श्याम या शबल नामक, जो दो कुक्कुर हैं, मैं उनको पिण्डदान करता हूं, वह अहिंसक हों। देव, मनुष्य, पशु, राक्षस, यक्ष, उरग, खर्ग, दैत्य, सिद्धि, पिशाच, प्रेत, भूत, दानव, तृण, तरु, कृमि पाकोठ प्रभृति जो कर्म्मसूत्रमें आवद्ध और क्षुधार्त्त हो, मेरे दिये हुए अन्नकी कामना करते हैं, मैं उनकी तृप्तिके लिये अन्न प्रदान करता हूं; इससे उनकी परितृप्ति हो।" कहकर भूतबलिप्रदानकर गोदोहन मात्र काल अतिथिके आगमनकी प्रतीक्षाकर, भोजनगृहमें प्रवेश करेंगे। वायसबलि प्रदान न करके नित्य श्राद्ध करेंगे। नित्य श्राद्धकी सामर्थ्य न हो, तो दरिद्र व्यक्ति, अपने भोज्य अन्नसे थोड़ा अन्न लेकर यथोक्त बलिप्रदान करेंगे। नित्य श्राद्धमें देवपक्ष नहीं है और उसमें अन्यान्य श्राद्धकी तरह विशेष विशेष नियमका भी प्रयोजन नहीं। यह नित्यश्राद्ध दक्षिणारहित है, इसमें दाता या भोक्ताको ब्रह्मचर्य्यका प्रयोजन नहीं है। सुस्थमति अनातुर व्यक्ति इस तरह पितृयज्ञका अनुष्ठानकर, प्रशस्त आसनसे उपवेशन करते हुए शोभन गन्ध और माल्य धारणकर, शुचिवस्त्रयुग्म परिधानकर, प्रशस्त अन्तःकरणसे पूर्व्वमुख या उत्तरमुख हो आहशेष भोजनके उपरान्त, शिशुगणके साथ भोजन करेंगे। आपोशन विधान द्वारा अन्नके ऊपरी और अधोभागसे अनग्नत्व सम्पादनकर सुबुद्धि द्विज, भोजन करेंगे। प्रति भुवनपति और भूतपतिको स्वाहान्त मन्त्र उच्चारणकर एक एक ग्रास अन्न भूमिमें प्रदान करेंगे। पहले एकबार आचमनकर कुशहस्त और प्रसन्नचित्त हो जठररूप कुण्डकी अग्निसे

प्राणादि पञ्चवायुको पांच बार अन्नाहुति प्रदान करेंगी। (यही आपोशन विधि) है। जो मनुष्य कुशहस्तसे भोजन करते हैं, उनके अन्नमें केश और कीटादि-पातजन्य दोष नहीं होता; अतएव कुश हस्तसे भोजन करनेकी विधि है। जबतक रुचि रहे, तबतक अन्न भोजन करेंगी और भोजनके समय अन्नका गुणागुण न कहेंगी। जबतक अन्नका गुणागुण कहा नहीं जाता, तबतक पितृलोग उस अन्नका भोजन करते हैं। इसलिये जो मनुष्य मौनी हो भोजन करते, वह केवल अमृत ही भोजन करते हैं। फिर दुग्धतक्र अथवा केवल जल-पानकर "अमृताविधानमसि" इस मन्त्रको उच्चारण करते हुए एक गण्डूषजल पान-कर पीतावशिष्ट वह जल वक्ष्यमाण मन्त्रको पढ़ते पढ़ते भूमिमें निक्षेप करेंगी। "जो अनन्तवर्ष रौरवनामक नरकमें वास करते हैं और जो अप्रक्षालितहस्त मनुष्यके दक्षिण हाथके अङ्गुष्ठमूलके उच्छिष्ट जलकी इच्छा रखते हों, मेरा उत्सृष्ट यह जल उनके पक्षमें अक्षय हो।" मेधावी व्यक्ति फिर आचमनकर शुचि हो यत्न सहित हाथमें जल लेकर यह मन्त्र उच्चारण करेंगी, "जो पुरुष परिमाणसे और जो अङ्गुष्ठका आश्रयकर विद्यमान हैं, सब जगत्के अधीश्वर, प्रभु विश्वभुक् प्रसन्न हों।" इस तरह अन्न भोजनके बाद हाथ पैर धोकर भुक्तान्न परिपाकके लिये वक्ष्य-माण मन्त्रसमूह पढ़ेंगी," पवन प्रेरित मेरी जठराग्नि, मेरी सब पार्थिव धातुकी परि-तुष्टिके लिये आकाशप्रदत्त अवकाश लाभ-कर भुक्त पदार्थको सब जीर्ण करें, मुझे सुख हो। यह भुक्त अन्न, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नामक शरीर-स्थित वायुगणको परितुष्ट करें और इससे अव्याहत सुख हो। समुद्र, बाड़वाग्नि, सूर्य्य और सूर्य्यनन्दन यह सब मेरा भक्षित अन्न जीर्ण करें।" फिर मुखशुद्धि-कर पुराण श्रवणादि द्वारा दिवसका अव-शिष्ट भाग अतिवाहितकर, सायंकालकी सन्ध्या प्रारम्भ करेंगी। गृहमें सन्ध्या, गोष्टमें सन्ध्या और नदी-तीरमें सन्ध्या करनेसे यथाक्रमसे दशगुण अधिक फल होता है और नदीसङ्गममें सन्ध्या करनेसे उसकी अपेक्षा शतगुण अधिक फल होता है; शिवसमीपमें सन्ध्याका फल अनन्त है। वह्निः प्रदेशमें सन्ध्याकी उपासना करनेसे, दिवाकृत मैथु-नजन्य और मिथ्याकथनजन्य, मद्यगन्ध-आघ्राणजन्य प्रभृति पाप विनष्ट होता है। 'गायत्री सरस्वती और सामवेदस्वरूपा, वशिष्ट ऋषिकर्तृक समन्विता, उनका अङ्ग कृष्णवर्ण, परिधानमें भी कृष्णवर्ण वस्त्र, वह ईषत् स्खलितयौवना, गरुड़वाहना, विष्णुदेवता, विघ्नविनाशिनी, वह जगती नामक छन्दयुक्ता और एकाक्षरस्वरूपा हैं।" सायंकालको इस तरह गायत्रीका

ध्यान करेंगी। सुधीव्यक्ति, "अग्निश्च" इत्यादि मन्त्र द्वारा आचमनकर, पश्चिम ओर मुखकर जबतक नक्षत्र न दिखाई दें, तबतक गायत्रीका जप करेंगी। सायंकालको अतिथिके उपस्थित होनेपर उसे मधुर वाक्य, स्थान, आसन और जल प्रदानकर सम्मानपूर्व्वक आहारादि करावेंगी। सुधी व्यक्ति इस तरह रातका पहला प्रहर अतिवाहितकर, फिर शय्यापर जावेंगी। इस तरह वेदाध्ययनाध्यापनादि द्वारा दैनिक कर्मसाधनकर अनतिह्रस्वभावसे एक काष्ठमयी शय्यापर शयन करेंगी। यह अतीव नित्यकर्म्म मैंने संक्षेपमें तुमसे कहा। यह सब कर्म्म अनुष्ठान करनेसे ब्राह्मण, कभी अवसन्न नहीं होते।

पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंश अध्याय।

ब्रह्मचारिसदाचार।

स्कन्दने कहा, हे कुम्भयोने! जिसके सुननेसे बुद्धिमान व्यक्तिको अज्ञानतिमिरमें प्रवेश करना नहीं पड़ता, मैं फिर सदाचारके सम्बन्धमें विशेष कुछ और भी कहता हूं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्णोंको द्विज कहते हैं। यह लोग प्रथम जन्म मातासे, द्वितीय जन्म उपनयनसे इन वर्णत्रयके गर्भाधानसे श्मशानान्त क्रियाकलाप, वेदविहित है। सबुद्धि व्यक्ति, मूला और मघा नक्षत्र त्यागकर, ऋतुकालमें गर्भाधान करेंगी। गर्भस्पन्दनके पहले पुंसवन करेंगी। फिर षष्ठ या अष्टममाससे गर्भसे सीमन्तोन्नयन करेंगी। फिर पुत्र उत्पन्न होनेपर, जातकर्म्म करेंगी। एकादश दिन नामकरण करेंगी चतुर्थमासमें गृहसे निष्क्रामण करेंगे। छठें महीने बालकका अन्नप्राशन करेंगे। एक वर्ष पूर्ण होनेपर या कुलाचारानुसार बालकका चूड़ा-कर्म्म करेंगी। यह सब क्रिया करनेसे, वीजगर्भज दोष विनष्ट होता है। स्त्रियां इन सब क्रियाओंको अमन्त्रक करेंगी। केवल विवाह समन्त्रक करें। सप्तम या अष्टम वर्षमें ब्राह्मणको उपनयन प्रदान करेंगी और क्षत्रियका एकादश वर्षमें अथवा वैश्यका द्वादश वर्षमें कुलाचारानुसार उपनयन करेंगी। ब्रह्मतेज-वृद्धिके अभिलाषी विप्र पांचवें वर्षमें और बलार्थी क्षत्रिय या कृष्यादिवृत्तिवृद्धिके अभिलाषी वैश्य यथाक्रमसे षष्ठ और अष्टम वर्षमें उपनीत होते हैं। गुरु, शिष्यका उपनयन संस्कारकर, उसे महाव्याहृतिपूर्व्वक वेदाध्ययन करावेंगी और शौचाचारमें नियुक्त करेंगी। पूर्व्वोक्त विधिक्रमसे, मलत्याग और शौचके बाद दन्तजिह्वा परिशोधनकर आचमन करेंगी। फिर जलदैवत "मन्त्रसमूह" द्वारा स्नानकर यत्नसहित प्राणायाम करेंगी। सन्ध्याद्वयमें सूर्य्यका उपस्थानकर

अग्निकार्य्य सम्पादन करते हुए "अमुक गोत्र मैं, (अपना नाम) आपका अभिवादन करता हूं" कहकर ब्राह्मणका अभिवादन करेंगे। जो मनुष्य ब्राह्मणोंका अभिवादन और वृद्धोंकी सेवा करेंगे, प्रत्यह उनकी आयु, यश, बल, और बुद्धिकी वृद्धि होगी। गुरुद्वारा आहूत हो, विद्याध्ययन करेंगे और प्रत्यह लब्ध द्रव्य उन्हें निवेदन करेंगे। कायमनोवाक्यसे सदा उनका हित करेंगे। जो साधु, विश्वस्त, ज्ञानदाता, वित्तदाता, भक्त, कृतज्ञ, शुचि, अद्रोहक और अनुसूयक हैं, उन्हें धर्म्मतः अध्ययन करावेंगे। अर्थकी आशा करना उचित नहीं। ब्रह्मचारी होकर भी दण्ड, मेखला, उपवीत और अजिन धारण करें और आत्मजीवनके लिये अनिन्दित ब्राह्मणके घर भिक्षाचरण करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके भिक्षावाक्यमें यथाक्रमसे, आदि, मध्य और अन्तमें भवत् शब्द रहेगा। (ब्राह्मण कहेंगे "भवन् भिक्षां देहि," क्षत्रिय कहेंगे, "भिक्षां भवन् देहि" वैश्य कहेंगे, "भिक्षां देहि भवन्") गुरुकी अनुमतिसे मौनी हो भोजन करेंगे अन्नके प्रति घृणा न करेंगे। एकस्वामिक अन्न भोजन निषिद्ध है; तब भी श्राद्धमें और आपत्कालमें एकस्वामिक अन्न भोजन कर सकते हैं। अति भोजन रोगकर, आयुःक्षयकर, पुण्यगर्हित और लोकविद्विष्ट है; अतएव वह परित्याज्य है। द्विजोत्तम एक दिवाभागमें दोबार अन्न भोजन कभी न करेंगे। अग्निहोत्र विधिज्ञ द्विज, दिनमें एक बार और रातमें एक बार भोजन करेंगे। मधुपान, मांसभोजन, प्राणिहिंसा, उदयादि, समयमें सूर्य्यदर्शन, अञ्जनराग, स्त्रीसम्भोग, पर्य्युषित भोजन, उच्छिष्टभोजन और परनिन्दा परित्याग करेंगे। ब्राह्मणके उपनयनका चरमकाल पन्द्रहवर्ष दोमास पर्य्यन्त क्षत्रियका इक्कीस वर्ष दो मास और वैश्यका चौबीस वर्ष दो मास पर्य्यन्त है। इस निर्दिष्ट समयके बाद भी जो अनुपनीत रहते हैं, वह पतित और धर्म्मवर्ज्जित हैं। व्रात्यस्तोम यज्ञ द्वारा उनका पातित्य दूर होता है। पूर्व्वोक्त सावित्री-पतित व्यक्तिगणके साथ सम्बन्ध-बद्ध नहीं होगा। द्विजकी तीनवर्णके कृष्णसारचर्म्म, रुरुचर्म्म और छागचर्म्म यथाक्रमसे उत्तरीय है। शणसूत्रनिर्म्मित वस्त्र, क्षौमवस्त्र और मेषलोम सम्भूत वस्त्र द्विजातियोंको यथाक्रमसे परिधेय है। ब्राह्मणको मेखला मौञ्जी, क्षत्रियको मौर्व्वी और वैश्यको शणतन्तुमयी है। मेखला त्रिवित्त (तीन पेंच), सम और श्लक्ष्ण होगा। मुञ्जातृणाभावसे मौञ्जी दुर्घट होनेसे कुश, अश्मन्तक तृण, अथवा वल्वज तृण द्वारा मेखला कर्त्तव्य है। मेखला एक ग्रन्थियुक्त, ग्रन्थित्रययुक्त अथवा पञ्चग्रन्थियुक्त होगी, द्विजवर्णत्रयका उपवीत यथाक्रमसे, कार्पाससूत्रनिर्म्मित, शणसूत्रनि-

ग्मित और मेषलोमनिर्म्मित होगा। उपवीत त्रिवृत्त होगा और दक्षिणावर्त्ती उपनीत आयुवृद्धिकर है। विल्ववृक्ष अथवा पलाशवृक्षका दण्ड ब्राह्मणको, न्यग्रोध अथवा खदिर-वृक्षका दण्ड क्षत्रियको और पीलु अथवा उडुम्बरवृक्षका दण्ड वैश्यको होगा। दण्डका ऊर्द्ध परिमाण—ब्राह्मणके मस्तक पर्य्यन्त, क्षत्रियके ललाट पर्य्यन्त और वैश्यके नाक पर्य्यन्त होगा। दण्ड त्वक्युक्त होगा और अग्नि द्वारा दूषित न होगा। अग्नि प्रदक्षिण और सूर्य्योपस्थानकर ब्रह्मचारी दण्ड, चर्म्म और उपनीतयुक्त हो यथाकी-र्त्तित भिक्षाचरण करेंगे। प्रथम भिक्षा माता, मातृष्वसा, भगिनी अथवा पितृष्वसृ प्रभृतिके पास या जो रमणी "न" न करे, उससे लेना कर्त्तव्य है। जबतक वेदाध्ययन और वेदव्रत करते हैं, तबतक ब्रह्मचारी पदवाच्य रहते हैं; इसके उपरान्त स्नात-स्नानकर गृहस्थ होते हैं! ऐसे ब्रह्मचारी-का नाम "उपकुर्व्वाणक" है। दूसरी तरहके ब्रह्मचारीका नाम "नैष्ठिक" है; यह ब्रह्म-चारी आजीवन गुरुकुलमें वास करते हैं। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम ग्रहणकर फिर ब्रह्म-चारी होते हैं, वह न ब्रह्मचारी, न यति, न वाणप्रस्थ—उनका कोई आश्रम ही नहीं है। द्विज अनाश्रमी हो एक दिन भी न रहेंगे; कारण आश्रम व्यतीत रहनेसे, द्विजको प्रायश्चित्त करना होता है। आश्र-महीन व्यक्ति, जप, होम, व्रत, दान, स्वाध्याय और पितृतर्पण ही क्यों न करें, उन्हें फल नहीं होता। मेखला चर्म्म और दण्ड प्रभृति ब्रह्मचारीका चिह्न है; ब्रह्मयज्ञादि गृहस्थका चिह्न और नखलो-मादि वाणप्रस्थका चिह्न है; त्रिदण्ड प्रभृति यतिका लक्षण है। यह सब लक्षणहीन आश्रमी प्रत्यक्ष प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। कमण्डलु, दण्ड, उपवीत और चर्म्म जीर्ण होनेपर ब्रह्मचारी उसे जलमें फेंक मन्त्र उच्चारण करते हुए दूसरा कमण्डलु प्रभृति ग्रहण करेंगे। गृहस्थाश्रम-प्रतिपत्तिके लिये ब्राह्मणादि द्विजत्रयका यथाक्रमसे षोड़श वर्षमें, द्वाविंश वर्षमें और चतुर्व्विंश वर्षमें "केशान्त" संस्कार होगा। तपस्या, यज्ञ, व्रत और अन्यान्य सर्व्वप्रकार शुभ-कार्य्यकी अपेक्षा द्विजगणके पक्षमें एक मात्र श्रुति ही मोक्षलक्ष्मीका हेतु है। वेदके आरम्भमें और अवसानमें प्रणवयोग करेंगे। कारण उक्तरूपसे प्रणवहीन वेद पढ़नेसे भी वह सिद्धिप्रद नहीं होता। प्रणवादि महाव्याहृतित्रय समन्वित त्रिपदा गायत्री वेदका मुख है। प्रणव महा-व्याहृति और गायत्री एतत्रय है, नियमसे एक मासतक प्रत्यह ग्रामवहिर्भागमें किञ्चि-दधिक सहस्र जप करनेसे महापातकादिसे भी मुक्तिलाभ होता है। जो मनुष्य अनन्य चित्तसे किञ्चिदधिक एक वर्षतक प्रत्यह इसका जप करते हैं, वह आकाशस्वरूप

और निर्म्मलात्मा हो परब्रह्मको प्राप्त होते हैं। तीन वर्णात्मक प्रणव, महाव्याहृति-त्रय और गायत्रीका तीनपाद—तीन वेदसे दोहन किया गया है। जो वेदज्ञ व्यक्ति, प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्यामें यह अक्षर (प्रणव) और व्याहृतिपूर्व्विका गायत्रीका जप करते हैं, उन्हें समग्रवेद-पाठ-पुण्य होता है। विधियज्ञकी अपेक्षा जपका फल दशगुण पाया जाता है। क्योंकि, विधियज्ञकी अपेक्षा जपयज्ञ दशगुण श्रेष्ठ है; यह शास्त्रका वचन है। जपयज्ञोंमें और रहस्य जपयज्ञ पूर्व्वापेक्षा शतगुण श्रेष्ठ है; मानस जपयज्ञ उसकी अपेक्षा भी सहस्रगुण श्रेष्ठ है। द्विज, अपनी शक्तिके अनुसार वेदत्रय, वेदद्वय अथवा एक वेदका अध्ययन करनेसे स्वर्णपूर्ण पृथिवी-दानका फल पाते हैं। द्विजोत्तम तप-स्यार्थ, सदा वेदाभ्यास ही करेंगे। वेदा-भ्यास ही ब्राह्मणकी परम तपस्या कही गई है। वेदाध्यन परित्यागकर दूसरे शास्त्रके पढ़नेकी इच्छा करना और दुग्ध-वती धेनुको परित्यागकर ग्रामशूकरीदो-हनकी इच्छा करना बराबर है। जो द्विज, शिष्यको उपनीतकर सकल्प और सरहस वेदअध्यापन करते हैं, पण्डितगण उन्हें आचार्य्य कहते हैं। जो वृत्तिके लिये वेदका एक देश अथवा वेदाङ्गसमूह अध्ययन करते हैं, पण्डित लोग उन्हें "उपाध्याय" कहते हैं। जो द्विज, यथाविधि गर्भाधा-नादि कर्म्म करते हैं और अन्न द्वारा पालन करते हैं, संसारमें वह पिता अर्थात् 'गुरु' कहे जाते हैं। जो कृति होते और जिनका अन्याधेयकर्म्म है, जो पाकयज्ञ और अग्निष्टोमादियज्ञ करते हैं, वह "ऋत्-विक्" नामसे संसारमें अभिहित हैं। उपाध्यायकी अपेक्षा आचार्य्यका गौरव दशगुण अधिक है, आचार्य्यसे दशगुण गौरव पिताका और पिताकी अपेक्षा सहस्रगुण अधिक गौरवान्विता माता हैं। ज्ञानानुसार ब्राह्मणोंकी ज्येष्ठता, बाहुवीर्य्यानुसार क्षत्रियोंकी ज्येष्ठता, धन-धान्यानुसार वैश्योंकी ज्येष्ठता और शूद्रों-की ज्येष्ठता जन्मानुसार है। काष्ठमय हस्ती, चर्म्ममय मृग और अध्ययनवर्ज्जित ब्राह्मण एक समान हैं। यह तीनों पदार्थ नामधारी मात्र हैं। ब्रह्मचारी द्विज, अ-निच्छाक्रमसे स्वप्नावस्थामें स्खलित वीर्य्य होनेसे, स्नानकर सूर्य्यकी पूजाकर तीन बार "पुनर्म्माम्" इत्यादि मन्त्रका जप करेंगे। ब्रह्मचारी, स्वधर्म्मनिरत वेदज्ञ-स्वर्ण्णानुष्ठायी मनुष्योंके घरमें प्रत्यह, प्रयत-भावसे भिक्षा करेंगे, आतुरता छोड़कर सातदिन भिक्षाचरण और अग्निसमिन्धन न करनेसे "अवकीर्णिप्रायश्चित्त' करना होता है। गुरुके दृष्टपथमें या-इच्छाकी चेष्टा न करेंगे। जहां गुरुकी निन्दा हो वहां न-जावेंगे। उनके परोक्षमें भी गुरुनाम निर्व्विशेषण ग्रहण गुरुनिन्दा हो अथवा

गुरुके परिवाद (विद्यमान दोषकीर्त्तन) हो, वहां दोनो कानको आच्छादनकर रहें अथवा उस जगहसे अन्यत्र चले आवेंगे। गुरुका परिवाद करनेसे गर्द्दभ-योनि प्राप्त होती है, गुरुनिन्दा करनेसे कुक्कुरयोनि प्राप्त होती है। गुरुद्वेष्टा क्षुद्र कीट होते हैं और गुरुसे पहले भोजन करनेवाले, कृमियोनिकी प्राप्त होते हैं। गुणदोषाभिज्ञ विंशतिवर्षीय शिष्य, युवती गुरुपत्नीके अति साध्वी होनेपर भी कभी चरण ग्रहणकर उनका अभिवादन न करेंगे। स्त्रियोंका स्वभाव चञ्चल है, पुरु-षोंमें भी दोष है; अतएव पण्डितलोग प्रमदारके पक्षमें कभी असावधान न होंगे। कारण, रमणी पण्डित मूर्ख सबको ही अतिशय मनचाञ्चल्य सम्पादन करती हैं, अथवा सूत्रबद्ध पक्षीकी तरह लोगोंको आत्मवशवर्त्ती कर डालती हैं। माता, दुहिता और भगिनीके साथ भी निर्ज्जन सेवा न करेंगे। प्रवल इन्द्रियनिचय, पण्डितोंको भी मोहित करती हैं। यत्नसे भूमि खोदते खोदते उससे जो फल मिलता है, उसी तरह शिष्य, गुरुशुश्रूषा द्वारा गुरुसे विद्यालाभ करते हैं। ब्रह्मचारीको शयनावस्थामें ही यदि सूर्य्य उदय हो, अथवा प्रमादतः शयनावस्थामें ही यदि सूर्य्यास्त हो, तो उक्त ब्रह्मचारी गायत्री जपते हुए एक दिन उपवास करेंगे। पिता माता पुत्र होनेपर जो क्लेश सहा करती हैं, सौ वर्षमें भी वह ऋण परिशो-धनीय नहीं। अतएव पितामाताका और गुरुका प्रियानुष्ठान करना कर्त्तव्य है। इन तीनके तुष्ट रहनेपर, सब तपस्याका फल मिलता है। इन तीनजनकी शुश्रूषा ही परम तपस्या कही गई है। उन लो-गोंको अतिक्रमकर जो कुछ करेंगे, वह काम कदाच न होगा। जो सुबुद्धि व्यक्ति इन तीन आदमियोंकी आराधना करते हैं, वह त्रिलोकजयी हैं; उनकी सन्तोष-वृद्धि करनेसे, मनुष्य स्वर्गमें देववत्क्रीड़ा कर-नेमें समर्थ होते हैं। वह कृती व्यक्ति मातृभक्तिबलसे भूर्लोक, पितृभक्तिबलसे भुवर्लोक और गुरुशुश्रूषाबलसे स्वर्लोक जयमें समर्थ होते हैं। इनका सन्तोष-साधन ही मनुष्यके लिये धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष कहे जाते हैं। और सब उपधर्म्म कहे जाते हैं। क्रमानुसार वेदत्रय, वेदद्वय अथवा एक वेद अध्ययनकर अस्खलित-ब्रह्मचर्य्य द्विज, गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होंगे। विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे ही ब्रह्मचर्य्य अस्ख-लित रहता है, विश्वेश्वरकी परम अनुग्रह ही काशीप्राप्तका हेतु है। काशीप्राप्त होनेसे, ज्ञान होता है और ज्ञानके प्रभा-वसे निर्व्वाण प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् व्यक्तियोंका सदाचार प्रयत्न निर्व्वाणमुक्तिके लिये ही है। गृहस्थाश्रममें जैसा सदा-चार है, वैसा और किसी आश्रममें नहीं। अतएव विद्यासमूह अध्ययन करनेपर गृह-

स्थाश्रमका आश्रय लेंगे। पत्नी यदि अनुकूला हो, तो गृहस्थाश्रमकी अपेक्षा अच्छा और कोई नहीं है। दम्पतिका परस्पर आनुकूल्य त्रिवर्ग प्राप्तिका हेतु है। पत्नी यदि अनुकूला हो, तो स्वर्गका प्रयोजन हो क्या है? और पत्नी यदि प्रतिकूला हो, तो उसकी अपेक्षा नरक और क्या है? गृहस्थाश्रमका फल सुख, किन्तु सुखका मूल भार्य्या है; ऐसा होनेसे निश्चय त्रिवर्गकी प्राप्ति है। मन्दबुद्धिगण प्रमदागणको जलौकाके साथ उपमित करते हैं। किन्तु विचार करनेसे रमणी और जलौकामें महान् प्रभेद है। क्षुद्रा जलौका, केवल रक्त ही ग्रहण करती है, प्रमदा, मन, धन, बल, सुख—सदा ग्रहण करती है। दक्षता, सन्तानसम्पत्ति, शाध्वील, प्रियवचन और पतिका आनुकूल्य यह सब गुणयुक्ताभार्य्या स्त्रीरूपधारिणी लक्ष्मी हैं। गुरुकी अनुमति क्रमसे व्रतसमापन और वेदसमापनके बाद स्नानकर सवर्णा सुलक्षणा रमणीसे विवाह करेंगे। पिताकी असगोत्रा और मातामहकी असपिण्डा कन्या, द्विजगणके धर्मवृद्धिकर विवाह कार्य्यमें योग्या हैं। जिस कुलमें अपस्मार रोग, क्षय रोग अथवा श्वित्र रोग हैं, जिस कुलमें अपवाद है और जिस वंशमें कन्या ही अधिक उत्पन्न हुई हैं, विवाहके सम्बन्धमें वह सब कुल परित्याज्य हैं। द्विज, रोगहीना, भ्रातृमती, सौम्यवदना, मृदुभाषिणी और अपनी अपेक्षा तुच्छ वयःकनिष्ठा कन्यासे विवाह करेंगे। सुधी व्यक्ति, पर्व्वत, नक्षत्र, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी, अथवा भृत्यवाचक जिस कन्याका नाम हो, उससे विवाह न करेंगे; सौम्यनाम्नी रमणीसे विवाह करेंगे। हीनाङ्गी, अधिकाङ्गी, अतिदीर्घा, अतिकृशा, लोमहीना और अतिलोमा, इन सबको और जिनके केश सूक्ष्म या स्थूल हैं, उन कन्यासे विवाह न करेंगे। कुलहीना कन्यासे विवाह न करेंगे। मोहवश कुलहीना कन्यासे विवाह करनेपर, आत्मसन्तानद्वारा भी हीनता प्राप्त होती है। पहले लक्षणकी परीक्षाकर, तब कन्यासे विवाह करेंगे। सुलक्षण और सदाचार भार्य्या पतिकी आयु बढ़ाती हैं। हे कुम्भयोने! तुमसे यह ब्रह्मचारीका सदाचार कहा। अब प्रसङ्गक्रमसे स्त्रियोंके लक्षण कहता हूं।

षट्त्रिंश अध्याय समाप्त॥ ३६॥

सप्तत्रिंश अध्याय।

स्त्री-लक्षण।

स्कन्दने कहा, स्त्रीके सुलक्षण होनेपर घरमें सदा सुखभोग होता है, अतएव सुखसमृद्धिके लिये पहले स्त्रियोंके लक्षणकी परीक्षा करना उचित है। देह, देहका आवर्त्त, गन्धकान्ति, अन्तःकरण, स्वर, गति और वर्ण—पण्डित लोग यह अष्टविध

लक्षण कहते हैं। हे मुने! पादतलसे आरम्भकर केश पर्य्यन्त सर्व्वाङ्गका शुभाशुभ लक्षण क्रमसे कहता हूं, सुनो; पद, पदतल, पदतलरेखा, पदाङ्गुष्ठ, पदाङ्गुलि, पदनख, पादपृष्ठ, गुल्फद्वय, पार्ष्णिद्वय, जङ्घाद्वय, रोमसमूह, जानुद्वय, उरुद्वय, कटिद्वय, नितम्ब, स्फिक, स्त्री-अङ्ग, जघन, वस्ति, नाभि, कुक्षद्वय, पार्श्व उदर मध्यभाग, त्रिवलि, रोमावली, हृदय, वक्षःस्थल, स्तनद्वय, स्तनाग्र, जत्रु, स्कन्ध, कक्ष, बाहुद्वयं, मणिबन्ध, करद्वय, पाणिपृष्ठ पाणितल, पाणितलकी रेखा, कराङ्गुष्ठ, कराङ्गुलि, करनख, पृष्ठ, कृकाटिका, कण्ठ, चिवुक, हनूद्वय, कपोलद्वय, मुख, अधर, उष्ठ, दन्त, जिह्वा। जिह्वाका अधोभाग, तालु, हास्य, नासिका, क्षुत नयनद्वय, पक्ष, भ्रूयुगल, कर्ण, ललाट, मस्तक, सीमन्त और केश यह षड्धिक षष्टि अवयव रमणीके अङ्गलक्षणके उत्तम स्थान हैं। स्त्रियोंका स्निग्ध, मांसल, कोमल, समविन्यस्त, स्वेदहीन, उष्ण और रक्तवर्ण पदतल, बहुभोगका सूचक कहलाकर स्मृति हुआ है। रुक्ष, विवर्ण, कर्कश, खण्डित प्रतिबिम्ब, (पूरी भूमिमें जिसका दाग तरह न पड़े), सूर्प्पाकृति और विशुष्क पदतल दुःख दुर्भाग्यका सूचक है। चक्र, स्वस्तिक, शङ्ख, पद्म, ध्वजमीन, और आतपत्ररेखा, जिनके पैरमें हैं, वह राजपत्नी होती हैं। जिस रमणीके पदतलमें ऊर्द्धरेखा मध्यमाङ्गलीके साथ मिला हो, उसे सम्पूर्ण सुख भोग होता है और इन्दूर सर्प और काकोंकी रेखा दुःखदारिद्र्यका सूचक है। उन्नत, मांसल वर्त्तुल अङ्गुष्ठ अतुलनीय सुखभोगका सूचक है। वक्र, ह्रस्व और चिपटा अङ्गुष्ठ सुखसौभाग्यका विनाशक है। विशाल अङ्गुष्ठ होनेसे विधवा होतीं और दीर्घाङ्गुष्ठा नारी दुर्भगा होती हैं। घनसन्निवेश समुन्नत कोमल उंगली ही प्रशस्त हैं। दीर्घ उंगली होनेसे, कुलटा और कृश उंगली होनेसे अति निर्द्धना होती हैं। ह्रस्व उंगली अल्प आयुका लक्षण है, कुटिल उंगलीसे कुटिल व्यवहारयुक्ता होती हैं। चिपटी उंगली होनेसे दासी होती और विरलाङ्गुलि दारिद्र्यका सूचक है। पदाङ्गुलिचय यदि परस्पर उपर्य्युपरि चढ़ी हो, तो वह रमणी बहु पतिको (स्वक) विनष्टकर पराधिकी दासी होती हैं। जिस रमणीके चलनेसे मार्गभूमिकी धूल उड़ती हो, वह कुलत्रय विनाशिनी पांशुला होकर रहती हैं। जिस रमणीकी कनिष्ठा उंगली चलनेके समय भूमि स्पर्श न करे, वह एक स्वामीको विनष्टकर दूसरे स्वामीको परिग्रह करेंगी। जिसकी अनामिका उंगली, भूतल स्पर्श नहीं करती, वह दो स्वामीको निहत करती हैं। जिसकी मध्यमा उंगली भूतल स्पर्श न करे, वह तीन स्वामीको निहत करेंगी। अनामिका

और मध्यमा, यह दो उंगली जिनके नहीं हैं, अथवा छोटी हैं, वह नारी पतिहीना होती हैं, जिसकी तर्ज्जनी उंगली अङ्गुष्ठके साथ एक बारगी हो मिल गई हो, वह कन्या समयसे ही कुलटा होती हैं, यह निश्चित प्रवाद है। स्निग्ध, समुन्नत, ताम्र-वर्ण, सुवृत्त पदनख शुभसूचक हैं। स्त्रियोंका उन्नत, स्वेदहीन, कोमल, मसृण, मांसल और शिराविहीन पादपृष्ठ राज्ञीत्वका सूचक है। मध्यनम्र पादपृष्ठ दारिद्र्यका सूचक और शिरावहुल पादपृष्ठवाली रमणी सदा पथिभ्रमणशीला होती हैं। पादपृष्ठ रोमाढ्य होनेसे, दासी होना पड़ता है। मांसहीन पादपृष्ठ दुर्भाग्यका लक्षण है। शिराहीन सुवर्त्तुल गूढ़गुल्फ मङ्गलप्रद कहा जाता है। देखनेमें निम्न या शिथिल गुल्फद्वय दुर्भाग्यसूचक हैं। जिस रमणीका पार्ष्णिभाग समान है, वह शुभा है, स्थूलपार्ष्णि नारी दुर्भगा हैं। जिनका, पार्ष्णि उन्नत है वह नारी कुलटा होती हैं, दीर्घपार्ष्णिमती नारी दुःखभोगिनी होती हैं। जिनके जङ्घाद्वय बराबर हैं, स्निग्ध, रोमहीन, शिराहीन, क्रमवर्त्तुल और अति मनोहर होंगी, वह राजपत्नी होंगी। एक एक रोमकूपमें जिनके एक एक रोम हैं, वह नारी राजपत्नी होती हैं। दो रोम भी सुखका लक्षण है। किन्तु जिनके तीन तीन रोम रहते हैं, वह वैधव्य दुःखभागिनी होती हैं। वर्त्तुल; मांसल जानुयुगल प्रशस्त हैं। जिनके निर्म्मांस जानु हैं, वह स्वैरिणी होती हैं। अवर्त्तुल जानु दारिद्र्यका सूचक है। जिनका ऊरुद्वय, शिराहीन, करि-शुण्डाकृतिघन, मसृण, सुवर्त्तुल, रोमरहित हैं, वह रमणी राजपत्नी होती हैं। रोमश ऊरु वैधव्यसूचक है, चिपटी ऊरु दुर्भाग्य-सूचक। बीचमें छिद्रयुक्त ऊरु महादुःखका सूचक और कर्कशलक ऊरु दारिद्र्य-सूचक है। रमणियोंकी चतुर्व्विंशति उंगली परिमित, समुन्नत नितम्ब शोभित चतुरस्र कटि ही प्रशस्त है। निम्न, चिपटी, दीर्घ, मंसहीन, कर्कश, ह्रस्व और रोमयुक्त कटि दुःखवैधव्यका सूचक है। रमणियोंका उन्नत, मांसल, विशाल नितम्ब महाभोगका सूचक कहा जाता है, दूसरी तरहका नितम्ब असुखकर जानेंगी। जिस नारीका स्फिकद्वय कपित्थफलवत् वर्त्तुल, मांसल, घन और वलहीन है, उन्हें सन्तोष और सुखवृद्धि होती है,.................. विपुल, कोमल और अल्प उन्नत वस्ति प्रशस्त है। रोमश, शिराल और रेखाङ्कित वस्ति शोभन नहीं है। गम्भीर और दक्षिणावर्त्त नाभि, सुख सम्पदका सूचक है। वामावर्त्त, उत्तान और व्यक्तग्रन्थि नाभि, शुभसूचक नहीं। विशाल कुक्षियुता नारी सुखिनी होती और अनेक पुत्र प्रसव करती है। मण्डूकके उदरकी तरह जिसकी कुक्षि है, उसका पुत्र राजा होता

है। जिसकी कुक्षि उन्नत है, वह वन्ध्या होती हैं; जिसकी कुक्षि वलियुक्त है, प्रव्रजिता और जिसकी कुक्षि आवर्त्त युक्त है वह दासी होकर रहती हैं। जिन स्त्रियोंका सम, मांसल मग्नास्थि, कोमल और सूक्ष्म है, पार्श्वदेश सौभाग्य और सुखका सूचक है, और जिनका पार्श्वद्वय, दृश्यशिरा उन्नत रोमयुक्त है, वह अपत्यहीना, दुःशीला और दुःखयुक्ता हैं। जिनका उदर क्षुद्र, शिराहीन और मृदुत्वक् है, वह भोगाढ्य होतीं और बहुत मिष्टान सेवन करतीं और कुम्भ, कुष्माण्ड, मृदङ्ग और यवाकार उदर किसी चीजसे पूर्ण नहीं होता और इस प्रकारका उदर दारिद्र्यका सूचक है। जिसका उदर अतिशय विशाल है, वह अपत्यहीना और दुर्भगा हैं; जिनका उदर लम्बमान है, वह श्वशुरघातिनी और देवरघातिनी होती हैं। जिनका मध्यदेश कृश है, वह नारी सौभाग्यवती और जिनका मध्यदेश त्रिवलीयुक्त है, वह रमणी भोगसम्पन्ना होती हैं। जिनकी रोमावली ऋजु, और सूक्ष्म है, वह स्त्री सुखकी क्रीड़ाभूमि हैं। स्त्रियोंकी रोमावली कपिलवर्णा, कुटिल, स्थूल और विच्छिन्न है, वह चौर्य्य, वैधव्य, दौर्भाग्यकी सूचना देती है। जिनका हृदय रोमहीन है, सम और निम्नत्ववर्ज्जित है, वह ऐश्वर्य्यवती पतिप्रेमभागिनी हैं, वह विधवा नहीं होतीं। विस्तीर्णहृदया रमणी निर्दया और पुंश्चली होती हैं। जिन स्त्रीके हृदयमें रोम रहता है, वह निश्चय पतिघातिनी होती हैं। अष्टादश अङ्गुलिपरिमित, पीवर और उन्नत वक्षःस्थल ही सुखसूचक और उनका रोमश, विषम और पृथु होनेसे दुःखसूचक होता है। रमणियोंका घन, वृत्त, दृढ़, पीन और सम स्तनद्वय ही प्रशस्त हैं। स्थूलाग्र विरल और शुष्क स्तनद्वय दुःखसूचक हैं। जिनका दक्षिण स्तन उन्नत होता है, वह पुत्रवती और स्त्रियोंमें श्रेष्ठा होती हैं और जिनका बांया स्तन उन्नत होता है, वह सौभाग्यसुन्दरी कन्या प्रसव करती हैं। स्तनद्वय घटीयन्त्रस्थ घटीतुल्य होनेसे दुःशीलताका सूचक है। पीवरास्य सान्तराल और स्थूलोपान्त स्तनद्वय शुभसूचक नहीं हैं। जिनका स्तनमूल स्थूल है, क्रमशः कृश और अग्रभाग तीक्ष्ण है, वह नारी पहले सुखभागिनी हो, फिर अतिशय दुःख भोग करती हैं। वर्त्तुल श्यामवर्ण और स्थूलवर्ण चुचुकद्वय ही प्रशस्त हैं अन्तर्मग्न, दीर्घ और कृश चुचुकद्वय की शुभी सूचक हैं। जिस नारीके जत्रुद्वय पीवर हैं, वह बहुतर धन-धान्यवती होती और जिनका जत्रु, श्लथास्थि, विषम और निम्न है, वह दुःखिनी होती हैं; अबद्ध, अनत, अदीर्घ और अकृश स्कन्धद्वय, शुभकर होते हैं और वक्र, स्थूल और रोमयुक्त स्कन्धद्वय वैधव्य या दासीत्वके सूचक हैं। निगूढ़सन्धि

स्रस्ताग्र और सुसंहत स्कन्धद्वय और समुन्नताग्र स्कन्धद्वय वैधव्य और निर्म्मांस स्कन्धद्वय अतिशय दुःख प्रदान करते हैं। सूक्ष्मरोमविशिष्ट, तुङ्ग, स्निग्ध और मांसल कक्षद्वय प्रशस्त हैं। गम्भीर, शिराल स्वेदमेदुर कक्षद्वय प्रशस्त नहीं हैं। रमणियोंका गूढ़ास्थि गूढ़ग्रन्थि, कोमल, शिराहीन, और सरल बाहुद्वय प्रशस्त हैं। स्थूलरोमयुक्त बाहुद्वय वैधव्यके सूचक और ह्रस्व बाहुद्वय दुर्भाग्यके सूचक होते हैं। दृश्यमान शिरायुक्त नारियोंके बाहुद्वय, बहुत क्लेशके सूचक हैं। अङ्गुष्ठ और सब उंगली मिलाकर सामने आकुञ्चित करनेसे जिनके हस्तयुगल कमलकी तरह हो जायं, उन मृगाक्षीको बहुत सुख भोग मिलता है। कोमल मध्योन्नत, रक्तवर्ण अरन्ध्र, सुश्री और प्रशस्त स्वल्परेखायुक्त करतलद्वय प्रशस्त हैं। बहुरेखायुक्त करतल वैधव्यके सूचक हैं। रेखाहीन करतल दारिद्र्यके सूचक हैं। शिरायुक्त करतलविशिष्टा नारी भिक्षुकी होती हैं। रोमहीन, शिराहीन और समुन्नत करपृष्ठ शुभसूचक हैं। शिरायुक्त, रोमयुक्त और निर्म्मांस करपृष्ठ वैधव्यका सूचक है। रक्तवर्ण, व्यक्त, गभीर, स्निग्ध, वर्त्तुल और पूर्ण कररेखा रमणीके शुभभाग्यके सूचक हैं। करतलमें मत्स्यरेखा रहनेसे रमणी सौभाग्यवती होती हैं। स्वस्तिक-रेखा रहनेसे धनसम्पन्ना होतीं और पद्माकाररेखा रहनेसे राजपत्नी और राजमाता होती हैं। स्त्रियोंके करतलमें चक्रावर्त्त रेखा, प्रदक्षिण नन्द्यावर्त्तरेखा, शङ्खरेखा, शतपत्ररेखा और कमठाकार रेखा राजमातृत्वका सूचक है। जिनके हाथमें तुलामानाकार रेखाद्वय होंगी, वह वणिककी पत्नी होती हैं। जिन स्त्रियोंके वामकरमें गज, वाजी, वृष, प्रासाद और वज्राकार रेखा है, वह तीर्थपर्य्यटक पुत्र प्रसव करती हैं। जिनके हाथमें गाड़ी या युगकाष्ठाकृति रेखा है, वह कृषककी पत्नी होती हैं। जिनके हाथमें चामर अङ्कुश और धनुरेखा रहती है, वह निश्चय राजपत्नी होती हैं। जिस स्त्रीके अङ्गुष्ठमूलसे निकलकर एक रेखा कनिष्ठाके मूल पर्य्यन्त स्पर्श करे, वह स्त्री पतिघातिनी होतीं हैं; अतएव सुधी व्यक्ति दूर हीसे उसे परित्याग करेंगे। जिनके हाथमें त्रिशूल, असि, गदा, शक्ति और दुन्दुभिकी तरह रेखा हो, वह रमणी, दान द्वारा पृथिवीमें कीर्त्तिमती होती हैं। करतलस्थित कङ्क, शृगाल, भेक, वृक, वृश्चिक, सर्प, गर्दभ, उष्ट्र और विड़ालाकृति रेखा स्त्रियोंका दुःखसूचक है। सरल, वृत्त, वृत्तनख और कोमल अङ्गुष्ठ शुभसूचक है, उत्तम पर्व्वयुक्त, दीर्घ, वृत्त और क्रमशः कृश उंगलियां शुभफलकी सूचक हैं। चपटा, सङ्कुचित, रुक्ष और पृष्ठमें रोमयुक्त अङ्गुष्ठ अशुभसूचक है। अतिशय ह्रस्व, कृश, वक्र और विरल उंगलियां रोगसूचक

हैं। बहुपर्व्वयुक्त उंगलियां दुःखकी सूचक हैं। रक्तवर्णाशिख और तुङ्ग नखसमूह, रमणियोंके शुभसूचक हैं, निम्न विवर्ण शुक्तिसदृश और पीतवर्ण नखसमूह, दरिद्रताके सूचक हैं। जिन स्त्रियोंके नखसमूहमें श्वेतवर्ण विन्दु हों, वह प्रायः स्वैरिणी होती हैं, ऐसा नाखुन रहनेसे पुरुषगण भी दुःखी रहते हैं। अन्तर्निमग्न और मांसल पृष्ठका वंशदण्ड शुभसूचक है। रोमयुक्त पृष्ठ वैधव्यसूचक हैं। भुग्न, विनत और शिरायुक्त पृष्ठदेश दुःख सूचक है। सरल, समांस और समुन्नत कृकाटिका शुभसूचक होती है। शुष्क, शिरायुक्त, रोमाढ्य, विशाल और कुटिल कृकाटिका अशुभसूचक है। मांसल वर्त्तुल और चतुरङ्गुलि परिमित कण्ठदेश प्रशस्त है। रेखात्रयाङ्किता, अव्यक्तास्थि और सुसंहत ग्रीवा ही प्रशस्त है। मांसहीन, चिपटा, दीर्घ और सङ्कुचित ग्रीवा अशुभसूचक है। जिनकी ग्रीवा अतिशय स्थूल होती, वह विधवा होती हैं; जिनकी ग्रीवा वक्र है, वह किङ्करी होती हैं; जिनकी ग्रीवा चपटी होती है, वह बन्ध्या होती और जिनकी ग्रीवा ह्रस्व है, वह अपुत्रक होती हैं। वृत्त, पीन, सकोमल और दो अङ्गुल परिमित चिबुक प्रशस्त है। जिन रमणीका स्थूल, द्विधाविभक्त, आयत और रोमयुक्त चिबुक है, उनको ग्रहण न करेंगे। चिबुकसे लगा हुआ और सघन हनू शुभसूचक है। वक्र, स्थूल, कृश, ह्रस्व और रोमश हनू शुभसूचक नहीं। वृत्त, पीन और समुन्नत कपोलद्वय शुभसूचक हैं। रोमयुक्त, परुष, निम्न और निर्म्मांस कपोलद्वय अशुभकर हैं, अतएव अग्राह्य हैं। सम, समांस, सुस्निग्ध, सुगन्धयुक्त, वर्त्तुल और पितृवदनानुकारी वदन, कन्या, धन्या रमणियोंमें हैं। पाटलवर्ण, वर्त्तुल, स्निग्ध और मध्यस्थलमें रेखा विभूषित अधर, भूपतिपत्नीत्वका सूचक है। कृश, प्रलम्ब, स्फुटित और रुक्ष अधर दुर्भाग्यका सूचक है। जिन स्त्रियोंका निम्नउष्ठ श्याव और स्थूल है; वह विधवा और कलहकारिणी होती हैं। वरवर्णिनीका उत्तरोष्ठ मसृण, बीचमें कुछ उन्नत और रोमहीन होनेसे शोभनभोगप्रद होती हैं और इसके विपरीत होनेसे विपरीत फल मिलता है। गोदुग्धकी तरह श्वेतवर्ण, स्निग्ध, द्वात्रिंशत् परिमित, नीचे ऊपर समभाव अवस्थित और अल्प उन्नत दन्तसमूह शुभसूचक हैं. पीतवर्ण, श्याम, स्थूल, दीर्घ द्विपंक्ति, शुक्त्याकार और विरल दन्तसमूह दुःख और दुर्भाग्यके सूचक हैं। निम्नपंक्तिमें अधिक दांत रहनेसे वह निश्चय मातृनाशिनी होती हैं; निकट दन्त होनेसे, पतिहीना और दन्तसमूह विरल होनेसे नारी कुलटा होती हैं। ऊपरका भाग रक्तवर्ण, नीचेका असितवर्ण और कोमल जिह्वा होनेसे

अभीष्ट मिष्टद्रव्य भोग करती हैं, मध्यस्थलमें सङ्कीर्ण और परोभागसे विस्तीर्ण जिह्वा दुःखका सूचक है। जिनकी जिह्वा शुक्लवर्ण है, उनकी मृत्यु जलमें होती है; जिनकी जिह्वा श्यामवर्ण है, वह कलहप्रिय होती हैं; जिनकी जिह्वा मांसल है, वह दरिद्र होती हैं; जिनकी जिह्वा लम्बी है, वह अभक्ष्य भक्षण करती हैं और जिनकी रसना विशाल है, वह अत्यन्त प्रमादभागिनी होती हैं। स्निग्ध, कोकनदतुल्य और कोमलतालु प्रशस्त है। तालुके सितवर्ण होनेसे विधवा, पीतवर्ण होनेसे प्रव्रजिता, कृष्णवर्ण होनेसे अपत्यवियोगपीड़िता और रुक्ष होनेसे बहुकुटुम्बिनी होती हैं। अस्थूल, सुवृत्त, क्रमतीक्ष्ण, सुलोहित और अप्रलम्ब कण्ठघण्टी शुभसूचक है; स्थूल और कृष्णवर्ण कण्ठघण्टी दुःखसूचक है। हंसनेके समय जिनके दांत बाहर न निकलें, गण्डस्थल कुछ प्रफुल्ल हो उठे और नयनद्वय बन्द न हों, उनका हंसना शुभसूचक है। समवृत्त और अस्फुट, स्वल्पछिद्रविशिष्ट नासिका शुभसूचक है। स्थूलाग्र, मध्यनम्र और समुन्नत नासिका प्रशस्त नहीं। आकुञ्चित और अरुणवर्ण नासिकाग्र वैधव्य-क्लेशका सूचक है। नासिका चपटी और ह्रस्व होनेसे परप्रेष्या होती हैं। जिनकी नासिका दीर्घ है, वह कलहप्रिया होती है। जिन रमणीके चुत दीर्घ और तीन चार एकत्र हों, वह दीर्घायु होती हैं। प्रान्तभाग रक्तवर्ण, कृष्णवर्ण, तारकायुक्त, गोदुग्धकी तरह सफेद, सुस्निग्ध और कृष्ण पक्ष्मयुक्त लोचनद्वय शुभकर होते हैं। जो उन्नतनयना हैं, वह स्वल्पायु होती हैं। वृत्तनयना रमणी कुलटा होती हैं। जो मेषाक्षी, महिषाक्षी और केकराक्षी हैं, वह दुःभागिनी होती हैं। जिनके नयन गजकी तरह पिङ्गलवर्ण हों, वह अतिशय कामुकी होती हैं। पारावताक्षी नारी दुःशीला होती हैं; रक्ताक्षी स्त्री पतिनाशिनी होती हैं; कोटराक्षी नारी अतिदुष्टा होती हैं; गजनेत्रा रमणी शोभना नहीं होतीं। जिनकी बाईं आंख फूटी हो, वह पुंश्चली और जिनकी दाहनी आंख फूटी हो, वह बन्ध्या होती हैं। मधुरपिङ्गलवतनयना रमणी धनधान्यशालिनी होती हैं। सुघन, स्निग्ध, कृष्णवर्ण सूक्ष्म पक्ष्मावली सौभाग्यसूचक है। कपिलवर्ण, विरल और स्थूल पक्ष्मावली होनेसे, नारी, निन्दनीय होती हैं। सुवर्त्तुल स्निग्ध, कृष्णवर्ण, अमिलित, कोमलरोमयुक्त और कार्म्मुकाकृति भ्रूद्वय ही प्रशस्त हैं। खर रोमयुक्त, विकीर्ण, सरल, मिलित, दीर्घ रोमविशिष्ट और पिङ्गलवर्ण भ्रूद्वय अमङ्गलसूचक हैं। लम्बवान् शुभावर्त्त कर्णद्वय सुखकर और शुभसूचक हैं। शष्कुलीवर्ज्जित, शिरायुक्त, कुटिल